॥ श्रीहरिः ॥

184

भक्त-रत्नाकर

हनुमानप्रसाद पोद्दार

॥ श्रीहरिः ॥

निवेदन

यह संक्षिप्त भक्त-चरित-मालाका सत्रहवाँ पुष्प है। इसमें बड़े विचित्र भक्तोंकी मंगलमयी जीवन-गाथाएँ सजायी गयी हैं। भक्त कैसे विश्वासी, निःस्पृही, परदुःखकातर, हर अवस्थामें भगवान्‌के मंगलविधानको देख-देखकर प्रसन्न होनेवाले और भगवान्‌की कृपामें दृढ़ निश्चय रखनेवाले होते हैं तथा भगवान् कितने भक्तवत्सल, भक्तवाञ्छा-कल्पतरु, भक्ताधीन, भक्तवश्य और भक्त-प्रेमी होते हैं, इसके प्रत्यक्ष दर्शन इस भक्त-चरित-संग्रहमें होंगे। आशा है, पाठक-पाठिकाएँ इस मंगल-दर्शनसे अपनेको कृतार्थ करेंगे।

हनुमानप्रसाद पोद्दार

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

॥ श्रीहरि: ॥

भक्त-रत्नाकर

भक्त माधवदासजी

माधवदासजी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। गृहस्थ-आश्रममें आपने अच्छी धन-सम्पत्ति कमायी। आप बड़े ही विद्वान् तथा धार्मिक भक्त थे। जब आपकी धर्मपत्नी स्वर्गलोकको सिधारीं, तब आपके हृदयमें संसारसे सहसा वैराग्य हो गया। संसारको निस्सार समझकर आपने घर छोड़ जगन्नाथपुरीका रास्ता पकड़ा। वहाँ पहुँचकर आप समुद्रके किनारे एकान्त स्थानमें पड़े रहे और अपनेको भगवद्ध्यानमें तल्लीन कर दिया। आप ऐसे ध्यानमग्न हुए कि आपको अन्न-जलकी भी सुध न रही। प्रेमकी यही दशा है। इस प्रकार बिना अन्न-जल आपको कई दिन बीत गये; तब दयालु जगन्नाथजीको आपका इस प्रकार भूखे रहना न सहा गया। तुरंत सुभद्राजीको आज्ञा दी कि आप स्वयं उत्तम-से-उत्तम भोग सुवर्ण-थालमें रखकर मेरे भक्त माधवके पास पहुँचा आओ। सुभद्राजी प्रभुकी आज्ञा पाकर सुवर्ण-थाल सजाकर माधवदासजीके पास पहुँचीं। आपने देखा कि माधव तो ध्यानमें ऐसा मग्न है कि उनके आनेका भी कुछ ध्यान नहीं करता। अपनी आँखें मूँदे प्रभुकी परम मनोहर मूर्तिका ध्यान कर रहा है, अतएव आप भी ध्यानमें विक्षेप करना उचित न समझ थाल रखकर चली आयीं। जब माधवदासजीका ध्यान समाप्त हुआ, तब वे सुवर्णका थाल देख भगवत्कृपाका अनुभव कर आनन्दाश्रु बहाने लगे। भोग लगाया, प्रसाद पा थालको एक ओर रख दिया; फिर ध्यानमग्न हो गये!

उधर जब भगवान्‌के पट खुले, तब पुजारियोंने सोनेका एक थाल न देख बड़ा शोरगुल मचाया। पुरीभरमें तलाशी होने लगी। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते थाल माधवदासजीके पास पड़ा पाया गया। बस, फिर क्या था, माधवदासजीको चोर समझकर उनपर चाबुक पड़ने लगे। माधवदासजीने मुसकराते हुए सब चोटें सह लीं! रात्रिमें पुजारियोंको भयंकर स्वप्न दिखलायी दिया। भगवान्‌ने स्वप्नमें कहा कि—'मैंने माधवकी चोट अपने ऊपर ले ली, अब तुम्हारा सत्यानाश कर दूँगा, नहीं तो, उसके चरणोंपर पड़कर अपने अपराध क्षमा करवा लो।' बेचारे पण्डा दौड़ते हुए माधवदासजीके पास पहुँचे और उनके चरणोंपर जा गिरे। माधवदासजीने तुरंत क्षमा प्रदान कर उन्हें निर्भय किया। भक्तोंकी दयालुता स्वाभाविक है!

अब माधवदासजीके प्रेमकी दशा ऐसी हो गयी कि जब कभी आप भगवद्दर्शनके लिये मन्दिरमें जाते, तब प्रभुकी मूर्तिको ही एकटक देखते रह जाते। दर्शन समाप्त होनेपर आप तल्लीन अवस्थामें वहीं खड़े-खड़े पुजारियोंके अदृश्य हो जाते।

एक बार माधवदासजीको अतिसारका रोग हो गया। आप समुद्रके किनारे दूर जा पड़े। वहाँ इतने दुर्बल हो गये कि उठ-बैठ न सकते थे। ऐसी दशामें जगन्नाथजी स्वयं सेवक बनकर आपकी शुश्रूषा करने लगे। जब माधवदासजीको कुछ होश आया, तब उन्होंने तुरंत पहचान लिया कि हो-न-हो ये प्रभु ही हैं। यह समझ झट उनके चरण पकड़ लिये और विनीत भावसे कहने लगे—'नाथ! मुझ-जैसे अधमके लिये क्यों आपने इतना कष्ट उठाया? फिर प्रभो! आप तो सर्वशक्तिमान् हैं। अपनी शक्तिसे ही मेरे दुःख क्यों न हर लिये, वृथा इतना परिश्रम क्यों किया?' भगवान् कहने लगे—'माधव! मुझसे

भक्तोंका कष्ट नहीं सहा जाता, उनकी सेवाके योग्य मैं अपने सिवा किसीको नहीं समझता। इसी कारण तुम्हारी सेवा मैंने स्वयं की। तुम जानते हो कि प्रारब्ध भोगनेसे ही नष्ट होता है—यह मेरा ही नियम है, इसे मैं क्यों तोड़ूँ? इसलिये केवल सेवा कर प्रारब्ध-भोग भक्तोंसे करवाता हूँ और '**योऽसौ विश्वम्भरो देवः स भक्तान् किमुपेक्षते**' इसकी सत्यता संसारको दिखलाता हूँ।' भगवान् यह कहकर अन्तर्धान हो गये। इधर माधवदासजीके भी सब दुःख दूर हो गये।

इन घटनाओंसे लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। अब तो माधवदासजीकी महिमा चारों ओर फैलने लगी। लोग इनको बहुत घेरने लगे। भक्तोंके लिये सकामी संसारी जीवोंसे घिर जाना एक बड़ी आपत्ति है। आपको यह सूझा कि अब पागल बन जाना चाहिये। बस, आप पागल बन इधर-उधर हरि-ध्वनि करते घूमने लगे। एक दिन आप एक स्त्रीके द्वारपर गये और भिक्षा माँगी। वह स्त्री उस समय चौका दे रही थी, उसने मारे क्रोधसे चौकेका पोतना माधवजीके मुँहपर फेंककर मारा। आप बड़े प्रसन्न होकर उस पोतनेको अपने डेरेपर ले गये। उसे धो-सुखाकर भगवान्के मन्दिरमें जा उसकी बत्ती बनाकर जलायी, जिसका यह फल हुआ कि उस पोतनेकी बत्तीसे ज्यों-ज्यों मन्दिरमें प्रकाश फैलने लगा, त्यों-त्यों उस स्त्रीके हृदय-मन्दिरमें भी ज्ञानका प्रकाश होना प्रारम्भ हुआ। यहाँतक कि अन्तमें वह स्त्री परम भक्तिमती हो गयी और रात-दिन भगवान्के ध्यानमें मस्त रहने लगी।

एक बार एक बड़े शास्त्री पण्डित शास्त्रार्थद्वारा दिग्विजय करते हुए माधवजीके पाण्डित्यकी चर्चा सुनकर शास्त्रार्थ करने जगन्नाथपुरी आये और माधवदासजीसे शास्त्रार्थ करनेका हठ

करने लगे। भक्तोंको शास्त्रार्थ निरर्थक प्रतीत होता है। माधवदासजीने बहुत मना किया, पर पण्डित भला कैसे मानते? अन्तमें माधवदासजीने एक पत्रपर यह लिखकर हस्ताक्षर कर दिया, 'माधव हारा, पण्डितजी जीते।' पण्डितजी इस विजयपर फूले न समाये। तुरंत काशीको चल दिये। वहाँ पण्डितोंकी सभा कर वे अपनी विजयका वर्णन करने लगे और वह प्रमाणपत्र लोगोंको दिखाने लगे। पण्डितोंने देखा तो उसपर यह लिखा पाया, 'पण्डितजी हारे, माधव जीता।' अब तो पण्डितजी क्रोधके मारे आगबबूला हो गये। उलटे पैर जगन्नाथपुरी पहुँचे। वहाँ माधवदासजीको जी खोल गालियाँ सुनायीं और कहा कि 'शास्त्रार्थमें जो हारे, वही काला मुँह कर गदहेपर चढ़ नगरभरमें घूमे।' माधवदासजीने बहुत समझाया, पर वे क्यों मानने लगे? अवकाश पाकर भगवान् माधवदासजीका रूप बना पण्डितजीसे शास्त्रार्थ करने पहुँचे और भरी सभामें उन्हें खूब छकाया। अन्तमें उनकी शर्तके अनुसार उनका मुँह काला कर गदहेपर चढ़ा, सौ-दो-सौ बालकोंको ले धूल उड़ाते नगरमें सैर की। माधवदासजीने जब यह हाल सुना, तब भागे और भगवान्‌के चरण पकड़ उनसे पण्डितजीके अपराधोंकी क्षमा चाही। भगवान् तुरंत अन्तर्धान हो गये। माधवदासजीने पण्डितजीको गदहेसे उतारकर क्षमा माँगी, उनका रोष दूर किया। धन्य है भक्तोंकी सहिष्णुता और दयालुता!

एक बार माधवदासजी व्रजयात्राको जा रहे थे। मार्गमें एक बाई आपको भोजन कराने ले गयी। बाईने बड़े प्रेमसे आपको भोजन करवाया। इधर आपके साथ श्यामसुन्दरजी बगलमें बैठ भोजन करने लगे। बाई भगवान्‌का सुकुमार रूप देखकर रोने लगी और माधवजीसे पूछा, 'भगवन्! किस कठोरहृदय माताने ऐसे सुन्दर बालकको आपके साथ कर दिया।' माधवदासजीने

गर्दन फिराकर देखा तो श्यामसुन्दरजी भोजन कर रहे हैं। बस, आप सुधबुध भूल गये और बाईजीकी प्रशंसा कर उनकी परिक्रमा करने लगे। उसके भक्तिभाव और सौभाग्यकी सराहना कर वहाँसे विदा हुए।

माधवदासजीके ऐसे अनेक चरित्र हैं, विस्तार-भयसे यहाँ वर्णन नहीं किये जाते।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

भक्त विमलतीर्थ

पण्डित विमलतीर्थ नैष्ठिक ब्राह्मण थे। बड़ा सदाचारी, पवित्र कुल था इनका। त्रिकाल-सन्ध्या, अग्निहोत्र, वेदका स्वाध्याय, तत्त्व-विचार आदि इनके कुलमें सबके लिये मानो स्वाभाविक कर्म थे। सत्य, अहिंसा, क्षमा, दया, नम्रता, अस्तेय, अपरिग्रह और संतोष आदि गुण इस कुलमें पैतृक सम्पत्तिके रूपमें सबको मिलते थे। इतना सब होनेपर भी भगवान्‌के प्रति भक्तिका भाव जैसा होना चाहिये, वैसा नहीं देखा जाता था। पण्डित विमलतीर्थ इस कुलके एक अनुपम रत्न थे। इनकी माताका देहान्त लड़कपनमें ही हो गया था। ननिहालमें बालकोंका अभाव था, अतः यह पहलेसे ही अधिकांश समय नानीके पास रहते थे। माताके मरनेपर तो नानीने इनको छोड़ना ही नहीं चाहा, ये वहीं रहे। इनके नाना पण्डित निरंजनजी भी बड़े विद्वान् और महाशय थे। उनसे इनको सदाचारकी शिक्षा मिलती थी तथा गाँवके ही एक सुनिपुण अध्यापक इन्हें पढ़ाते थे। इनकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी। कुलपरम्पराकी पवित्र विद्याभिरुचि इनमें थी ही। अतएव इनको पढ़ानेमें अध्यापक महोदयको विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ता था। ये ग्रन्थोंको ऐसे सहज ही पढ़ लेते थे जैसे कोई पहले पढ़े हुए पाठको याद कर लेता हो। यज्ञोपवीत नानाजीने करवा ही दिया था, इसलिये ये त्रिकाल-सन्ध्या करते थे। नित्य प्रातःकाल बड़ोंको प्रणाम करते, उनकी श्रेष्ठ आज्ञाओंका कुतर्कशून्य बुद्धिसे, परंतु समझकर भलीभाँति पालन करते और सहज ही सबके स्नेहभाजन बने हुए थे।

विमलजीकी नानी सुनन्दादेवी परम भक्तिमती थी। उसने अपने पतिकी परमेश्वरभावसे सेवा करनेके साथ ही परम पति,

पतिके भी पति भगवान्‌की सेवामें अपने जीवनको लगा रखा था। भगवान्‌पर और उनके मंगल-विधानपर उसका अटल विश्वास था और इसलिये वह प्रत्येक स्थितिमें नित्य प्रसन्न रहा करती थी। इस प्रकारकी गुणवती पत्नीको पाकर पण्डित निरंजनजी भी अपनेको धन्य मानते थे। सुनन्दादेवी घरका सारा काम बड़ी दक्षता तथा सावधानीके साथ करती। परंतु इसमें उसका भाव यही रहता कि 'यह घर भगवान्‌का है, मुझे इसकी सेवाका भार सौंपा गया है। जबतक मेरे जिम्मे यह कार्य है, तबतक मुझे इसको सुचारुरूपसे करना है।' इस प्रकार समझकर वह समस्त कार्य करती; परंतु घरमें, घरकी वस्तुओंमें, कार्यमें तथा कार्यके फलमें न उसकी आसक्ति थी, न ममता। उसकी सारी आसक्ति और ममता अपने प्रभु भगवान् नारायणमें केन्द्रित हो गयी थी। इसलिये वह जो कुछ भी करती, सब अपने प्रभु श्रीनारायणकी प्रीतिके लिये, उन्हींका काम समझकर करती। इससे काम करनेमें भी उसे विशेष सुख मिलता था। शुद्ध कर्तव्यबुद्धिसे किये जानेवाले कर्ममें भी सुख है, परंतु उसमें वह सुख नहीं है जो अपने प्राणप्रिय प्रभुकी प्रसन्नताके लिये किये जानेवाले कर्ममें होता है। उसमें रूखापन तो कभी होता ही नहीं, एक विशेष प्रकारके रसकी अनुभूति होती है जो प्रेमीको पद-पदपर उल्लसित और उत्फुल्लित करती रहती है और वह नित्य-नूतन उत्साहसे सहज ही प्राणोंको न्योछावर करके प्रभुका कार्य करता रहता है; परंतु इस प्रकारके कार्यमें जो उसे अप्रतिम रसानुभूति मिलती है उसका कारण कर्म या उसका कोई फल नहीं है, उसका कारण है प्रभुमें केन्द्रित आसक्ति और समत्व। प्रभु उस कार्यसे प्रसन्न न हों और किसी दूसरे कार्यमें लगाना चाहें तो उसे उस पहले कार्यको छोड़कर दूसरेके करनेमें वही

आनन्द प्राप्त होगा जो पहलेको करनेमें होता था। सुनन्दाका इसी भावसे घरवालोंके साथ सम्बन्ध था और इसी भावसे वह घरका सारा कार्य सँभालती तथा करती थी। आज मातृहीन विमलको भी, सुनन्दा इसी भावसे हृदयकी सारी स्नेह-सुधाको उँडेलकर प्यार करती और पालती-पोसती है कि वह प्रियतम प्रभु भगवान्के द्वारा सौंपा हुआ सेवाका पात्र है। उसमें नानीका बड़ा ममत्व था, पर वह इसलिये नहीं था कि विमल उसकी कन्याका लड़का है, वरं इसलिये था कि वह भगवान्के बगीचेका एक सुन्दर सुमधुर फलवृक्ष है, जो सेवा-सँभालके लिये उसे सौंपा गया है। नानीके पवित्र और विशद स्नेहका विमलपर बड़ा प्रभाव पड़ा और विमलकी मति भी क्रमशः नानीकी सुमतिकी भाँति ही उत्तरोत्तर विमल होती गयी। उसमें भगवत्परायणता, भगवद्विश्वास, भगवद्भक्ति और शुभ भगवदीय कर्मके मधुर तथा निर्मल भाव जाग्रत् हो गये। वह नानीकी भगवद्-विग्रहकी सेवाको देख-देखकर मुग्ध होता, उसके मनमें भी भगवत्सेवा ही आती। अन्तमें उसके सच्चे तथा तीव्र मनोरथको देखकर भगवान्की प्रेरणासे नानीने उसके लिये भी एक सुन्दर भगवान् नारायणकी प्रतिमा मँगवा दी और नानीके उपदेशानुसार बालक विमल बड़े भक्तिभावसे भगवान्की पूजा करने लगा।

विमलतीर्थजीके विमल वंशमें सभी कुछ विमल तथा पवित्र था। भगवद्भक्तिकी कुछ कमी थी—वह यों पूरी हो गयी। कर्मकाण्ड, विद्या तथा तत्त्व-विचारके साथ जिसमें नम्रता तथा विनय होती है, वह अन्तमें विद्या तथा तत्त्वके परम-फल श्रीभगवान्की भक्तिको अवश्य प्राप्त करता है। परंतु जहाँ कर्मकाण्ड, विद्या एवं तत्त्व-विचार, अभिमान तथा घमंड पैदा करनेवाले होते हैं, वहाँ परिणाममें पतन होता है। वस्तुतः जो

कर्म, जो विद्या और जो विचार भगवान्‌की ओर न ले जाकर अभिमानके मलसे अन्तःकरणको दूषित कर देते हैं, वे तो कुकर्म-अविद्या और अविचाररूप ही हैं। विमलतीर्थके कुलमें कर्म, विद्या और तत्त्व-विचारके साथ सहज नम्रता थी—विनय थी और उसका फल भगवान्‌में रुचि तथा रति उत्पन्न होना अनिवार्य था। सत्कर्मका फल शुभ ही होता है और परम शुभ तो भगवद्भक्ति ही है। नानी सुनन्दाके संगसे विमलतीर्थकी विमल कुलपरम्पराके पवित्र फलका प्रादुर्भाव हो गया। नाना-नानीने बड़े उत्साहसे पवित्र कुलकी साधुस्वभावा सुनयनादेवीके साथ विमलतीर्थका विवाह पवित्र वैदिक विधानके अनुसार कर दिया। सुलक्षणवती बहू घरमें आ गयी। वृद्धा सुनन्दाके शरीरकी शक्ति क्षीण हो चली थी, अतएव घरके कार्यका तथा नानीजीके ठाकुरकी पूजाका भार सुनयनाने अपने ऊपर ले लिया। वृद्धा अब अपना सारा समय भगवान्‌के स्मरणमें लगाने लगी। निरंजन पण्डित भी बूढ़े हो गये थे। पर उनका स्वभाव बड़ा ही सुन्दर था। उन्होंने अपना मन भगवान्‌में लगाया। कुछ समयके बाद वृद्ध दम्पतिकी भगवान्‌का स्मरण करते-करते बिना किसी बीमारीके सहज ही मृत्यु हो गयी। विमल और सुनयना यों तो नाना-नानीकी सेवा सदा-सर्वदा करते ही थे, परंतु पुण्यपुंज दम्पतिने बीमार होकर उनसे सेवा नहीं ली। अब विमलतीर्थ ही इस घरके स्वामी हुए। पति-पत्नीमें बड़ा प्रेम था, दोनोंके बहुत पवित्र आचरण थे। दोनों ही भक्तिपरायण थे। विमल अपने भगवान्‌की पूजा नियमितरूपसे प्रेमपूर्वक करते थे और सुनयनादेवी नानी सुनन्दाके दिये हुए भगवान्‌की पूजा करती थी। यों पति-पत्नीके अलग-अलग ठाकुरजी थे। पर ठाकुर-सेवामें दोनोंको बड़ा आनन्द आता था। दोनों ही मानो होड़-सी लगाकर अपने-अपने

भगवान्‌को सुख पहुँचानेमें संलग्न रहते थे। दोनोंमें ही विद्या थी, श्रद्धा थी और सात्त्विक सेवा-भाव था।

विमलतीर्थके तीन बड़े भाई थे। वे भी बहुत अच्छे स्वभावके तथा शुभकर्मपरायण थे। छोटे भाई विमल अब एक प्रकारसे उन लोगोंके मामाके स्थानापन्न थे। चारोंमें परस्पर बड़ी प्रीति और स्नेह-सौहार्द था। प्रीतिका नाश तो स्वार्थमें होता है; इनका स्वार्थ विचित्र ढंगका था। ये परस्पर एक-दूसरेका विशेष हित करने, सुख पहुँचाने और सेवा करनेमें ही अपना स्वार्थ समझते थे। त्याग तो मानो इनकी स्वाभाविक सम्पत्ति थी। जहाँ त्याग होता है, वहाँ प्रेम रहता ही है और जहाँ प्रेम होता है, वहाँ आनन्दको रहने, बढ़ने तथा फूलने-फलनेके लिये पर्याप्त अवकाश मिलता है। दोनों परिवार इसीलिये आनन्दपूर्ण थे। नामके ही दो थे। वस्तुतः कार्यरूपमें एक ही थे।

विमलतीर्थजीके मनमें वैराग्य तो था ही। धीरे-धीरे उसमें वृद्धि होने लगी। भगवान्‌की कृपासे उनकी धर्मपत्नी इसमें सहायक हुई। दोनोंमें मानो वैराग्य तथा भक्तिकी होड़ लगी थी। ऐसी सात्त्विक ईर्ष्या भगवत्कृपासे ही होती है। इस ईर्ष्यामें एक-दूसरेसे आगे बढ़नेकी चेष्टा तो होती है, परंतु गिरानेकी या रोकनेकी नहीं होती। बल्कि परस्पर एक-दूसरेकी सहायता करनेमें ही प्रसन्नता होती है। शक्ति गिरानेमें नहीं, बढ़ने और बढ़ानेमें लगती है। यही शक्तिका सदुपयोग है।

आखिर उपरति बढ़ी, दोनों भगवान्‌के ध्यानमें मस्त रहने लगे। एक दिन भगवान्‌ने कृपा करके सुनयनादेवीको दर्शन दिये और उसी दिन भगवदाज्ञासे वे शरीर छोड़कर भगवान्‌के परम धाममें चली गयीं। विमलतीर्थजीको इससे बड़ी प्रसन्नता हुई। होड़में पत्नीकी विजय हुई। उसने भगवान्‌का साक्षात्कार पहले

किया। विमलतीर्थजीके लिये यह बड़े ही आनन्दका प्रसंग था। इस सात्त्विक होड़में हारनेवालेको जीतनेवालेकी जीतपर जिस अलौकिक सुखकी अनुभूति होती है, जगत्के स्वार्थी मनुष्य उसका अनुमान भी नहीं कर सकते। अस्तु!

अब विमलतीर्थ सर्वथा साधनामें लग गये। वे वनमें जाकर एकान्तमें रहने लगे और अपनी सारी विद्या-बुद्धिको भूलकर निरन्तर भगवान् श्रीनारायणके मंगलमय ध्यानमें ही रत रहने लगे। धीरे-धीरे भगवान्के दिव्य दर्शनकी उत्कण्ठा बढ़ी और एक दिन तो वह इतनी बढ़ गयी कि अब क्षणभरका विलम्ब भी असह्य हो गया। जैसे अत्यन्त पिपासासे व्याकुल होकर मनुष्य जलकी बूँदके लिये छटपटाता है और एक क्षणकी देर भी सहन नहीं कर सकता, वैसी दशा जब भगवान्के दर्शनके लिये भक्तकी हो जाती है, तब भगवान्को भी एक क्षणका विलम्ब असह्य हो जाता है और वे अपने सारे ऐश्वर्य-वैभवको भुलाकर उस नगण्य मानवके सामने प्रकट होकर उसे कृतार्थ करते हैं। भक्तवाञ्छा-कल्पतरु भगवान् श्रीनारायण विमलतीर्थको कृतार्थ करनेके लिये उनके सामने प्रकट हो गये। वे चकित होकर निर्निमेष नेत्रोंसे उस विलक्षण रूपमाधुरीको देखते ही रह गये। बड़ी देरके बाद उनमें हिलने-डोलने तथा बोलनेकी शक्ति आयी। तब तो आनन्द-मुग्ध होकर वे भगवान्के चरणोंमें लोट गये और प्रेमाश्रुओंसे उनके चरण-पद्मोंको पखारने लगे। भगवान्ने उठाकर बड़े स्नेहसे उनको हृदयसे लगा लिया और अपनी अनुपम अनन्य भक्तिका दान देकर सदाके लिये पावन बना दिया।

बोलो भक्त और उनके भगवान्की जय!

भक्त महेश मण्डल

(१)

देशभरमें अकाल पड़ा है, चारों ओर त्राहि-त्राहि मची हुई है, पूर्वबंगालमें अकालका विशेष प्रकोप है। लोग भूखके मारे मरे जा रहे हैं। इसी समयकी घटना है। महेश मण्डल जातिका था निम्न-शूद्र—चाण्डाल। दिनभर मजदूरी करके कुछ पैसे लाता, उसीसे अपना तथा अपनी स्त्री, पुत्र, कन्या चारोंका पेट भरता। जर-जमीन कुछ भी नहीं था। महेश भगवती दुर्गाका भक्त था, दिन-रात 'दुर्गा', 'दुर्गा' रटा करता। माँ दुर्गापर बड़ा विश्वास था उसका। कितना ही दुःख आवे, कैसी ही विपत्ति पड़े, कुछ भी हो, 'दुर्गा' नाम महेश कभी नहीं भूलता था।

देशभरमें दुर्भिक्ष था, ऐसे समय काम कहाँ मिलता? महेशका परिवार आधे पेट तो रहता ही था, किसी-किसी दिन सबको पूरा अनशन करना पड़ता। आज दो दिनका उपवास था, महेशने बड़ी मुश्किलसे छः आने पैसे कमाये। बाजारसे दो किलो चावल खरीदे और पार जानेके लिये नदीपर पहुँचा। नदीके घाटपर खेपू महाराज दिखायी दिये।

खेपू गाँवके ज्योतिषी थे। इधर-उधर घूम-फिरकर पंचांगका फल बतलाते, किसीकी जन्मकुण्डली देख देते। दुर्गापूजाके समय मूर्ति आदि चित्रित कर देते। इसी तरह जो कुछ मिलता, वही काम करके दो-चार पैसे कमा लेते। न मजदूरी कर सकते, न कोई और बँधी आमदनी थी। देशमें अकालके मारे हाहाकार मचा था। ऐसे वक्तमें इस तरहके आदमीको कौन पैसे देता? खेपू उदासमुँह घाटपर खड़े थे। उसी समय महेशसे उनकी मुलाकात हुई। महेशने ब्राह्मणका चेहरा उतरा हुआ देखकर पूछा कि 'घरमें

सब कुशल तो है?' खेपूने जवाब दिया—'क्या बताऊँ? माँ दुर्गाने मेरे नसीबमें कुछ लिखा ही नहीं। कहीं भीख नहीं मिली। तीन दिनसे घरमें किसीने कुछ नहीं खाया। आज घर जानेपर सभी लोग मरणासन्न ही मिलेंगे। इसी चिन्तामें डूब रहा हूँ।' महेशने कहा—'विपत्तिमें माँ दुर्गाके सिवा और कौन रक्षा करनेवाला है? वही खानेको देती है और वही नहीं देती। हमारा तो काम है बस, माँके आगे रोना। उनके आगे पुकारकर रोनेसे जरूर भीख मिलेगी।' खेपूने कहा—'भाई! अब यह विश्वास नहीं रहा। देखते हो—दुःखके सागरमें डूब-उतरा रहा हूँ। बस, प्राण निकलना ही चाहते हैं। बताओ कैसे विश्वास करूँ।'

माँ दुर्गाकी निन्दा सुनकर महेशकी आँखोंमें पानी भर आया। महेशने कहा—'लो न, माँ दुर्गाने तुम्हारी भीख मेरे हाथ भेजी है। तुम रोओ मत।' चावल-दाल सब खेपूको देकर महेश हँसता हुआ घरको चला। खेपूको अन्न देकर महेश मानो अपनेको कृतार्थ मान रहा था। उसने सोचा—'आज एकादशी है। जीवनमें कभी एकादशीका व्रत नहीं किया। कल दशमी थी। कुछ खाया नहीं। आज उपवास हो गया, इससे व्रतका नियम पूरा सध गया। अब भगवान् देंगे तो कल द्वादशीका पारण हो ही जायगा। एक दिन न खानेसे मर थोड़े ही जायँगे।'

इस प्रकार सोचता-विचारता महेश घर पहुँचा। महेशको देखते ही स्त्रीने सामने आकर कहा—'जल्दी चावल दो तो भात बना दूँ। बच्चा शायद आज नहीं बचेगा। बड़ी देरसे भूखके मारे बेहोश पड़ा है। मुझे चावल दो, मैं चूल्हेपर चढ़ाऊँ और तुम जाकर बच्चेको सँभालो।' महेशने कहा—'माँ दुर्गाका नाम लेकर बच्चेके मुँहमें जल डाल दो। माँकी दयासे यह जल ही उसके लिये अमृत हो जायगा। खेपू महाराजके बच्चे तीन दिनसे भूखे

हैं। आज खानेको न मिलता तो मर ही जाते। मैं दो किलो चावल लाया था, सब उनको दे आया हूँ।' महेशकी स्त्रीने कहा—'आधा उनको देकर आधा ले आते तो बच्चोंको दो कौर भात दे देती। तीन वर्षका बच्चा दो दिनसे बिना खाये बेहोश पड़ा है। अब क्या होगा। माँ दुर्गा ही जाने।'

महेशने कहा—'यदि माँ काली बचायेगी तो कौन मारने-वाला है? अवश्य ही बच जायगा और यदि समय पूरा ही हो गया है तो प्राणोंका वियोग होना ठीक ही है। खेपूका सारा परिवार तीन दिनसे भूखा है। पहले वह बचे। हमारे भाग्यमें जो कुछ बदा है, हो ही जायगा।'

इसीका नाम त्याग है। एक करोड़पति अपने करोड़ रुपयोंमेंसे नामके लिये लाख रुपये दान दे दे तो इसमें कोई त्याग नहीं। न उसको देनेमें कोई कष्ट हुआ और न वह बदला पानेसे वंचित ही रहा। अखबारोंमें नाम छप गया; सरकारसे उपाधि मिल गयी और कोठीकी साख ज्यादा बढ़ गयी। त्याग तो वह है कि जिसमें कुछ कष्ट उठाना पड़ता है, इसीलिये उसका महत्त्व है। इसीलिये शास्त्रोंमें उस आधे ग्रासका महान् फल बतलाया है, जो अपने एकमात्र मुँहके ग्रासमेंसे दिया जाता है। उसके सामने लाखों-करोड़ोंका दान कोई महत्त्व नहीं रखता। महेशका त्याग तो बहुत ही ऊँचा है। उसने अपने मुँहका आधा ग्रास ही नहीं दिया; सारा ही नहीं दिया, उसने जो कुछ दिया वह बहुत ही बढ़कर दिया। अपना शिशु पुत्र दो दिनसे भूखा है—भूखके मारे बेहोश पड़ा है—उसके मुँहका दाना महेशने खेपूके उन बच्चोंकी जान बचानेके लिये दे दिया, जो तीन दिनके भूखे हैं। महेशने सोचा—'मेरा बच्चा दो दिनका भूखा है, परंतु वे तो तीन दिनके भूखे हैं, पहले उनको मिलना चाहिये।' अपने बच्चेके दुःखकी अपेक्षा

महेश खेपूके बच्चोंके लिये अधिक दुःखी है। यह भी नहीं कि महेशने किसी दबावमें पड़कर अप्रसन्नता या विषादके साथ चावल दिये हों। उसने हँसते चेहरेसे दिये, हँसता हुआ ही वह घर आया और अपने बच्चेको मौतके मुँहमें देखकर भी अपनी कृतिपर होनेवाली उसकी प्रसन्नता घटी नहीं। धन्य!

(२)

जिसका भगवान्पर विश्वास होता है, जो भगवान्के नामपर त्याग करना जानता है, जो दुःख और विपत्तियोंमें भी उन्हें भगवान्का आशीर्वाद मानकर—अपने मंगलकी चीज मानकर भगवान्का कृतज्ञ होता है, जो भगवान्की दी हुई बुरी-से-बुरी और दुःखसे भरी दीखनेवाली स्थितिमें भी भगवान्के मंगल-मुखकी हास्य छटाको देखकर हँसता है, कोई भी दुःखभार भगवान्के विश्वासके मार्गसे जिसको नहीं डिगा सकता, जो हर हालतमें हँसता हुआ भगवान्की हर एक देनपर सच्चे दिलसे खुशी मनाता हुआ भगवान्के नामको पुकारता रहता है—भगवान् उसके योगक्षेमका वहन स्वयं करते हैं। उसका सारा भार अपने सिर उठा लेते हैं। यह सत्य है—ध्रुव सत्य है। हम अभागे मनुष्य विश्वासकी कमीसे ही दुःख-पर-दुःख उठाते हैं और भगवान्की बरसती हुई कृपाधारासे वंचित रह जाते हैं। अस्तु!

महेशके पड़ोसमें गोपाल भौमिक नामक एक मध्यवित्त गृहस्थ रहते थे। घरके बीचमें पक्की दीवाल थी नहीं। महेश और उसकी स्त्रीमें जो बातचीत हुई, उसे सुनकर गोपाल और उनकी पत्नी दोनों चकित हो गये! गोपालने अपनी पत्नीसे कहा—'मालूम होता है यह तो साक्षात् महेश ही है। भला, इतना त्याग कौन मनुष्य कर सकता है। जैसा महेश, ठीक वैसी उसकी स्त्री! मरणासन्न बच्चेको देखकर भी, न तो वह पतिपर नाराज ही हुई

और न उसके मुँहसे एक कड़ा शब्द ही निकला। हमारे घर रसोई तैयार है। चलो, ले चलें और उन भक्त स्त्री-पुरुषकी सेवा करके अपने जीवनको धन्य बनावें।

दाल, भात और तरकारीकी हाँडियोंको लेकर गोपालकी स्त्री उमा अपने पतिके साथ महेशकी झोंपड़ीमें पहुँची। गोपालके हाथमें दूधका कटोरा और तीन-चार दर्जन केले थे। इतनी चीजोंको लेकर जब वे महेशके सामने पहुँचे, तब महेश उन्हें देखकर विस्मित हो गया और उसने आश्चर्यसे कहा—'यह क्यों? मैंने तो आपसे कुछ चाहा नहीं था। बिना ही कारण इस नराधमको आप इतनी चीजें क्यों देने आये हैं?'

गोपालने सजल नेत्रोंसे कहा—'नराधम कौन है? हमलोग तो परम श्रद्धाके साथ साक्षात् महेशको भोग लगाने आये हैं। हमें इस सेवाका जो सौभाग्य प्राप्त हुआ, इसमें भी आपका संग ही कारण है। मैं आपका पड़ोसी हूँ।'

महेश बोला—'यह भोजन किसी सत्पात्रको दीजिये, आपको पुण्य होगा।' गोपालने आँखोंमें आँसू भरकर कुछ जोशके साथ कहा—'माँ दुर्गाका नाम लेकर मैं यह चीजें लाया हूँ। आप लौटा देंगे तो समझूँगा कि 'दुर्गा' के नामका कोई फल नहीं है, 'दुर्गा' नाम मिथ्या है।'

दुर्गाके नामका मिथ्या होना महेशके लिये असह्य है। अब उससे नहीं रहा गया और वह बड़े जोरसे 'दुर्गा', 'दुर्गा' पुकारता हुआ अपने स्त्री-बच्चोंको साथ लेकर खाने बैठ गया। गोपाल और उनकी स्त्री सामने बैठकर बड़े आदरके साथ भोजन परोसने लगे। महेशने दुर्गा मैयाका प्रसाद पाते-पाते कहा—'आज बड़े भाग्यसे खेपू महाराज मिले थे। वे न मिलते तो सिर्फ चावल ही खाकर रहना पड़ता। आज तो स्वयं माँ अन्नपूर्णा यह प्रसाद

लाकर खिला रही हैं। मुझे आज अन्नपूर्णाके दर्शन हो गये। माँ अन्नपूर्णा अपने हाथों मुझे इस प्रकार दूध-भात खिलाना चाहती थी, इसीलिये तो उन्होंने मुझे ऐसी बुद्धि दी कि मैं खेपूको सब चावल दे आया।'

(३)

महेश भीख माँगकर जीवन-निर्वाह करता था और उसीसे अतिथियोंकी सेवा भी। महेशके सीधेपनसे लोग अनुचित लाभ उठाते। दिनभर काम करवाकर बहुत थोड़ी मजदूरी देते। महेश कुछ नहीं बोलता। कोई किसी भी समय किसी भी कामके लिये महेशको बुलाता तो महेश 'माँ दुर्गा' की सेवा समझकर तुरंत जाकर उसके कामको कर देता। दुर्गाका नाम तो उसकी जीभसे कभी उतरता ही नहीं। माँ भी सदा उसकी सँभाल रखती और उसके निर्वाहयोग्य पैसे उसे मिल ही जाते।

वैशाखका अन्तिम दिन था। सन्ध्याके समय महेशकी नन्ही-सी मड़ैयापर एक ब्राह्मण गोस्वामी अतिथिके रूपमें पधारे। ब्राह्मणका रूप कच्चे सोने-सा सुन्दर था। उनकी देहसे ज्योति निकल रही थी। महेश उस समय घर नहीं था। महेशकी स्त्रीने पड़ोसी गोपाल भौमिकके घर कहलवाया। गाँवके बहुत-से लोग आ गये और उन्होंने अतिथि ब्राह्मणको गोपालके घर अथवा और कहीं टिकनेके लिये प्रार्थना की और कहा कि 'महेश बड़ा गरीब है। इसके घर जगह नहीं है। यहाँ आपको कच्चे आँगनमें सोना पड़ेगा, कष्ट होगा, इससे कृपा करके हमारे साथ चलिये।'

ब्राह्मणदेवताने कहा—'मैं तो यहीं आया हूँ। घरके मालिक जो दे सकेंगे वही ले लूँगा, पर किसी धनीके घर नहीं जाऊँगा।'

ब्राह्मणको किसी तरह राजी न होते देखकर लोग तरह-तरहकी बातें कहने लगे। किसीने कहा कि 'यह ब्राह्मण नहीं है।'

कोई बोला—'चाण्डालोंका ब्राह्मण होगा।' किसीने कहा—'ब्राह्मणों और कायस्थोंके घर छोड़कर यह चाण्डालके घर ठहरा है, इसीसे इसकी प्रवृत्तिका पता लग जाता है।' सब लोग यों कोसते हुए चले गये।

इसी समय महेश आ पहुँचा, उसने भक्तिभावसे अतिथिका आदर किया, उन्हें प्रणाम किया। महेशके घर तो कुछ था ही नहीं। वह अतिथिकी सेवाके लिये पड़ोसियोंके यहाँ कुछ माँगने गया। पड़ोसी तो पहलेसे ही तने बैठे थे। किसीने कुछ नहीं दिया, कहा कि 'उन्हें यहाँ लाओ तो देंगे।' बेचारा महेश उपाय न देखकर मधुखालि नामक गाँवमें गया। वहाँ चन्द्रनाथ साहा नामक एक बड़ा दूकानदार महेशका भक्त था। महेशके मुँहसे अतिथिके आनेकी बात सुनकर उसने लगभग बीस आदमियोंके सिरोंपर लादकर महेशके साथ खानेका बहुत-सा सामान भेज दिया और खुद भी वह उसके साथ चल दिया।

गोस्वामी महोदय श्रीमद्भागवतकी व्याख्या करने लगे। व्याख्या बड़ी सुन्दर थी। पाण्डित्य तो था ही, उसमेंसे भगवान्‌के प्रेमरसकी धारा बह रही थी। यह देखकर, जिन लोगोंने पहले गालियाँ दी थीं, वे ही आ-आकर चरणोंमें पड़ने और क्षमा चाहने लगे। कथा-समाप्तिके बाद रातके दूसरे पहर भगवान्‌को भोग लगाकर गोस्वामीने स्वयं भोजन किया और सबको प्रसाद दिया। इसी आनन्दमें सबेरा हो चला। इतनेमें देखते हैं कि गोस्वामी महाराजका कहीं पता नहीं है। लोगोंने उन्हें बहुत खोजा, पर वे कहीं नहीं मिले, तब यह निश्चय हो गया कि महेशपर कृपा करके स्वयं भगवान् ही गोस्वामीके रूपमें पधारे थे।

माघी पूर्णिमाका दिन था। गोपालके घर कीर्तन हो रहा था। इसी बीच महेश वहाँ पहुँचा और आनन्दके आँसू बहाता हुआ

वहाँ नाच-नाचकर बड़े जोरोंसे भगवान्‌के नामका कीर्तन करने लगा। उसका सारा शरीर पुलकित हो रहा था। चन्द्रनाथ साहा धन्य-धन्य करने लगा। तीन वेश्याओंने आकर महेशकी चरणधूलि सिर चढ़ायी।

महेश कहने लगा—'देखो न, ये निताई-निमाई दोनों भाई कीर्तनके आँगनमें खड़े हैं! ये रहे राधा-कृष्ण। ये शिव-दुर्गा खड़े हैं! बस, आज ही तो मरने लायक सुदिन है।' महेशने अपनी स्त्रीसे कहा—'कुदाल लाकर गड़हा खोदो और उसमें जल छिड़क दो।' स्त्रीने यही किया। महेशने गड़हेमें सोकर कहा—'जय दुर्गा नाम सुनाओ!' चारों ओर शोर मच गया। लोग इकट्ठे हो गये। लोगोंने देखा, महेशकी आँखोंमें आँसू है, शरीरपर रोमांच है, मुँहसे 'दुर्गा' नामकी ध्वनि हो रही है और वह मन्द-मन्द मुसकरा रहा है। सब लोग उसे घेरकर कीर्तन करने लगे। यों नाम सुनते-सुनते महेशने महाप्रस्थान किया। कलिकालमें भी दुर्लभ इच्छा-मृत्यु हुई!

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

मंगलदास

आराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किं
नाराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किम्।
अन्तर्बहिर्यदि हरिस्तपसा ततः किं
नान्तर्बहिर्यदि हरिस्तपसा ततः किम्॥

चारों वेद जिसकी कीर्ति बखानते हैं, योगियोंके ध्यानमें जो क्षणभरके लिये भी नहीं आता, वह ग्वालिनोंके हाथ बिक जाता है। भावुक ग्वालिनें उसे अपने प्रेम-पाशमें बाँध लेती हैं। इन गँवारिनोंके पास वह गिड़गिड़ाता हुआ आता है और सयाने कहते हैं कि वह मिलता ही नहीं। इन ग्वालिनोंका कैसा महान् पुण्य था! इन्हें जो सुख मिला, वह दूसरोंके लिये, ब्रह्मादिके लिये भी दुर्लभ है। इन भोली-भाली अहीरिनोंके सुकृतका हिसाब कौन लगा सकता है, जिन्होंने मुरारिको खेलाया—अन्तःसुखसे खेलाया और बाह्यसुखसे भी। भगवान्‌ने उन्हें अन्तःसुख दिया। श्रीकृष्णको जिन्होंने अपना सब कुछ अर्पण कर दिया, जो घर-द्वार और पति-पुत्रतकको भूल गयीं; जिनके लिये धन, मान और स्वजन विष-से हो गये, वे एकान्तमें उसे पाकर निहाल हो गयीं। अंदर हरि, बाहर हरि, हरिने ही उन्हें अपने अंदर बंद कर रखा था।

नासिकके पास पंचवटी नामका एक पुण्य क्षेत्र है। आजसे लगभग दो सौ वर्ष पूर्व वहीं एक साधारण-से गाँवमें एक अहीरके घर मंगलका जन्म हुआ। मंगलके माता-पिता बहुत ही साधारण स्थितिके किसान थे। घरमें दो बैल थे और चार-पाँच गायें। पिता किसानी करते, माता गायोंकी देखभाल करती, दूध जमाती, दही बिलोती, मक्खन निकालती, घी बनाती और फिर गाँव-जवारमें बेचती। मंगल इसी अहीर-दम्पतिका एकमात्र

लाड़ला लाल था। मंगलके काले-काले गभुआरे कुंचित केश, बड़ी-बड़ी आँखें, सुन्दर सलोना मुख, प्यारभरी चितवन किसके जीको नहीं चुरा लेती? जो भी देखता उसपर लट्टू हो जाता। जो भी उधरसे निकलता एक बार मंगलको भर आँखें देखे बिना आगे नहीं बढ़ता। मंगल गाँवभरकी स्त्रियोंका प्यारा खिलौना बन गया। वे कई तरहके बहाने लेकर मंगलके घर आतीं—कोई आग लेनेके बहाने आती, कोई दीपक जलानेके बहाने, कोई दहीके लिये जामनके बहाने आती, कोई किसी भूली हुई बातको याद दिलानेके बहाने। मंगलको देखकर किसीका जी भरता ही न था, सभी चाहतीं मंगल मेरी ही आँखोंकी पुतली बना रहे।

हजारों वर्ष पूर्व हमने कन्हैयाको अपनी गोदमें रखकर खेलाया है। वह सुख हमारे प्राणोंमें समाया हुआ है और जन्म-जन्मके संस्कारको लेकर हम जहाँ भी जाते हैं, जहाँ भी रहते हैं, वहीं उस कान्हाको देखनेके लिये हमारे प्राण छटपटाते हैं, हृदय तड़पता है, जी कैसा-कैसा करता है। यही कारण है कि कहीं कोई सुन्दर बालक दीख गया तो हमें अपने 'प्यारेकी सुध आ जाती है' और हम क्षणभरके लिये ही सही, किसी और लोकमें, किन्हीं और स्मृतियोंमें जा पड़ते हैं। बालक मंगलको देखकर गाँवकी ग्वालिनोंकी वे ही पूर्व स्मृतियाँ उमड़ आतीं—वही नन्दरानी, वही नन्दलाल आँखोंमें झूल उठते!

माँ दही मथ रही है; मंगल उसकी पीठपर जा चढ़ा है और अपनी नन्हीं-नन्हीं भुजाओंसे बाँधकर माँकी गर्दनसे लिपटा हुआ है। इस सुखको कोई मातृहृदय ही अनुभव कर सकता है! मंगल था भी पूरा नटखट और शरारती। माँकी आँखें बचाकर दहीके ऊपरी हिस्सेको चट कर जाना या जमा किये हुए माखनको यार-दोस्तोंमें बाँट देना उसे बहुत भाता था। माँ उसकी इन सारी

हरकतोंको बहुत लाड़-प्यारसे देखती और उसके लल्लाका जी न दुःख जाय, इसलिये वह उसे कभी एक बात भी नहीं कहती।

जन्माष्टमीकी रात थी। मंगलके घर महान् उत्सव था। गाँव-जवारके स्त्री-पुरुष जुटे हुए थे। हिंडोला लगा हुआ था। उसपर श्यामसुन्दरकी मनोहर मूर्ति पधरायी गयी थी। माँ रेशमकी डोरी धीरे-धीरे खींच रही थी और गा रही थी—

मेरी अँखियनके भूषन गिरिधारी।
बलि बलि जाउँ छबीली छबि पर अति आनँद सुखकारी॥
परम उदार चतुर चिंतामणि दरस परस दुखहारी।
अतुल प्रताप तनक तुलसीदल मानत सेवा भारी॥
छीतस्वामी गिरिधरन बिसद जस गावत गोकुल नारी।
कहा बरनौं गुनगाथ नाथ के श्रीबिट्ठल हृदय बिहारी॥

माँ गा रही है, मंगल एकटक उस मंगलमयी मूर्तिको निहार रहा है। वह कुछ समझ नहीं रहा है कि यह सब क्या हो रहा है। परंतु उसके मन-प्राणमें एक दिव्य उल्लास नृत्य कर रहा है। वह यह सब एक कुतूहल और आनन्दकी दृष्टिसे देख रहा है और नाच रहा है। आधी रात हुई। देवकीका दुलारा जीव-जीवके हृदयमें उतरा। सर्वत्र आनन्द छा रहा है। मंगलके आनन्दकी कोई सीमा नहीं है। वह बार-बार माँसे पूछता है—'माँ! यह सब क्या है, किसलिये है।' माँ बच्चेको चूम लेती है और अश्रुगद्गद स्वरमें कहती है—'लल्ला! आज हमारे घर त्रिभुवनसुन्दर श्रीगोपालकृष्ण आये हैं। 'वे कैसे हैं माँ!' कैसे हैं, मैं क्या कहूँ? बड़े ही सुन्दर; बड़े ही मधुर, बड़े ही प्यारे! तुम एक बार उन्हें देख लोगे तो फिर छोड़ नहीं सकते, रात-दिन उन्हींके साथ लगे रहोगे, खाना-पीना सब कुछ भूल जाओगे, मुझे भी भूल जाओगे!' मंगलके लिये आजकी रात अत्यन्त रहस्यमयी सिद्ध

हुई। रातभर वह सोचता रहा—'वे कैसे हैं जिन्हें एक बार देख लेनेपर फिर कभी छोड़ा नहीं जाता। वे कैसे हैं जिन्हें पाकर सब कुछ भूल जाता है।'

दूसरे दिन मंगल अपनी गायें लेकर जब चरानेके लिये बाहर गया, तब रातवाली बात उसके मनमें चक्कर लगा रही थी। बार-बार यही विचार उसके मनमें उठ रहा था—वह कौन-सा साथी है, जिसे पाकर प्राणोंकी भूख-प्यास सदाके लिये शान्त हो जाती है। मंगलका हृदय आज अपने प्राणसखासे मिलनेके लिये ललक रहा था। गायोंको उसने चरनेके लिये छोड़ दिया। कुछ देरतक बछड़ोंके साथ खेलता रहा। कारी, कजरारी, धौरी, धूमरी, गोली सभी गायें दूर जा पड़ीं, बछड़े भी उनके पीछे-पीछे बहुत दूर जा पड़े। मंगल आज सजल श्यामल मेघमालाको देखता और उसका हृदय तरंगित हो उठता, दूरतक फैले हुए हरे-भरे खेत देखता और उसका हृदय भर आता। आकाशमें उड़ते हुए सारसोंकी पंक्ति देखता और चाहता मैं भी उड़ चलूँ। उफनती हुई, इठलाती हुई नदियाँ देखता और चाहता मैं भी इनकी धारामें एक होकर 'कहीं' चला जाता। आज उसके लिये जगत्के कण-कणमें एक विशेष संकेत—एक खास इशारा था, जिसे वह समझकर भी नहीं समझ रहा था और न समझते हुए भी समझ रहा था।

भगवान्के पथमें चलनेके लिये विशेष समझदारीकी जरूरत नहीं पड़ती, शास्त्रोंके ज्ञानकी आवश्यकता नहीं होती। ज्ञान-विज्ञानके गम्भीर रहस्योंकी छानबीनकी—पुंखानुपुंख अनुसन्धानकी आवश्यकता नहीं होती और न तत्त्वोंके विश्लेषणकी ही आवश्यकता है। आवश्यकता है एकमात्र हृदय-दानकी। प्रत्येक मनुष्यके जीवनमें एक-न-एक दिन ऐसा आता ही है जब वह भगवान्के संकेतको, प्रभुके इशारेको स्पष्ट सुनता है। यह इशारा

प्रत्येक प्राणीके लिये—जीवमात्रके लिये होता है। किन्तु अधिकांश तो इसे सुनकर अनसुना कर देते हैं और जगत्के विषय-विलासोंमें ही रचे-पचे रह जाते हैं। कुछ ही ऐसे महाभाग होते हैं, जो उस इशारेपर अपने जीवनकी बलि देकर अपने-आपको, अपने लोक-परलोकको प्रभुके चरणोंमें निछावर कर देते हैं। ऐसोंका जीवन हरिमय हो जाता है। उनका सब कर्म श्रीकृष्णार्पण होता है। उनका खाना-पीना, सोना-जागना, उठना-बैठना, हँसना-खेलना सब कुछ भगवत्प्रीतिके लिये होता है।

और भगवान्‌का रहस्य, उनका प्रेम, उनकी लीला जाननेसे थोड़े ही जानी जाती है। यह सब कुछ और इससे भी अधिक गोपनीय रहस्यकी बातें भगवान् अपने भक्तोंको स्वयं जना देते हैं और सच्चा जानना तो वस्तुतः तभी होता है, जब स्वयं श्रीभगवान् हमारे हृदयदेशमें अवतरित होकर हमे जनाते हैं—अपनी एक-एक बात कहते हैं। उनकी एक मृदुल मुसकान, एक मधुर हास्यमें हमारे सारे प्रश्न, सारी पहेली, समस्त शंकाएँ बह जाती हैं। जीवनकी गति गंगाके प्रवाहकी तरह अविच्छिन्नरूपसे श्रीकृष्णचरणोंकी ओर प्रवाहित हो जाती है, समस्त जगत् आनन्दके महासमुद्रमें डूब जाता है। श्रीकृष्णप्रेमके अतिरिक्त कोई वस्तु रह नहीं जाती। भगवान् भक्तको आलिंगनका सुख देकर प्रीतिसे उसके अंग-प्रत्यंगको शीतल कर देते हैं। उसे बरबस गोदमें उठा लेते हैं और पीताम्बरसे उसके आँसू पोछते हैं। प्रेमभरी दृष्टिसे देखते हुए उसे सान्त्वना देते हैं। ऐसी ही उनकी लीला है। अनेक भक्तोंका जीवन इसका साक्षी है। आज भी यह अनुभव दुर्लभ नहीं।

कितनी गजबकी है उनकी प्रीति! हम एक बार उनकी ओर देखते हैं तो वे लाख-लाख बार हमारी ओर दौड़ते हैं और हमारे

प्रेमके ग्राहक बन जाते हैं। एक बार भी जो उनकी पकड़में आ गया, वह सदाके लिये उनका बन जाता है; जिसे वे एक बार छू देते हैं उसे सदाके लिये ही अपना लेते हैं। प्रेमके लिये वह प्रेमी प्रभु दर-दर ठोकरें खा रहा है। घर-घर एक-एक व्यक्तिसे वह प्रेमकी भीख माँग रहा है। हम दुतकारते हैं फिर भी वह विकट प्रेमी हमारी उपेक्षा, भर्त्सनाका ध्यान न कर बार-बार आता है और कहता है—'हे जीव! प्रेमकी एक बूँद देकर मुझे सदाके लिये खरीद लो। मैं तुम्हारा गुलाम बन जाऊँगा।'

परंतु हाय रे मनुष्यका अभाग्य! इस अनोखे अतिथिकी प्रणय-भिक्षाकी ओर हमारी दृष्टि कभी जाती ही नहीं। हम डरते हैं कि एक बार उधर दृष्टि गयी नहीं कि हम बिके नहीं। मंगलकी दृष्टि, एक बार ही सही, उधर गयी और 'वह' सदाके लिये मंगलका साथी बन गया। दिनमें उसीका जलवा, रातमें उसीके सपने। ऐसा मालूम होता, कोई कंधेपर अपने कोमल हाथ रखकर कह रहा है—मेरी ओर देखो, मुझसे बात करो, कुछ बोलो! मंगल इस अदृश्य स्पर्शका अनुभव कर एक दिव्य आनन्दमें मूर्च्छित हो जाता। रातको वह सोता तो देखता कि कोई मेरे सिरहाने बैठा है, मेरे सिरको अपनी गोदमें रखकर मेरे ऊपर मन्द-मन्द मुसकानकी फुलझड़ियाँ बरसा रहा है—कभी हँसता है, कभी धीरे-धीरे गाता है। कभी अपनी प्यारभरी कोमल अँगुलियोंको मेरे बालोंमें उलझाकर लाड़ लड़ाता है, कभी आँखोंको चूमता और कपोलोंको सहलाता है। मंगल यह समझ नहीं पाता कि यह सब किसकी लीलाएँ हैं। परंतु वह यह जानता था कि मेरा एक साथी है जो रात-दिन मेरे साथ रहता है।

मंगलको उस लीलामयकी लीलाओंके दर्शन होने लगे। रातभर वह आधा सोता, आधा जागा रहता। ऐसा मालूम होता

कोई अपना अत्यन्त प्यारा प्राणोंको गुदगुदा रहा है। सबेरे जागता तो उस गुदगुदीकी अनुभूति बनी ही रहती। वह गायें खोलकर जब चरानेके लिये वनमें ले जाता, तब ऐसा प्रतीत होता मानो उसका साथी उसके साथ चल रहा है—कभी कुछ गाता है, कभी नाचता है, कभी प्रेममें रूठता है, कभी गले लगकर मनकी बातें कहता है, कभी दीखता है, कभी छिपता है। पके हुए बिम्बफलके समान अपने लाल-लाल होठोंपर वेणुको लगाकर भिन्न-भिन्न स्वरोंमें वह जाने क्या-क्या गाया करता है और उसका गीत सुनकर त्रिलोकीके चर-अचर जीव मोहित हो जाते हैं। वह वेणुको बजाते हुए मदमत्त हाथीकी तरह कयामतकी चाल चलता हुआ जब विलासपूर्ण दृष्टि निक्षेप करता है, तब समस्त वसुन्धरा उस मधुमें डूब जाती है।

मंगलको अब गायें चरानेमें एक अद्भुत आनन्द मिलता। वनमें उसे भगवान्‌की विविध लीलाओंके दर्शन होते। अब अपनी गायों और बछड़ोंसे उसकी अत्यन्त आत्मीयता हो गयी। वनमें वह देखता कि किसी नन्हें-से बछड़ेको गोदमें उठाकर श्रीकृष्ण चूम रहे हैं। कभी देखता कि किसी गायकी पीठपर बायाँ हाथ टेककर दाहिने हाथसे वंशीको अधरपर रखकर धीरे-धीरे कुछ गा रहे हैं। गायें कान खड़े करके, निर्निमेष दृष्टिसे उनकी ओर देख रही हैं और मुग्ध होकर वंशी-ध्वनि सुन रही हैं। जब वंशी बजती, तब झुंड-के-झुंड बैल, गाय और वनके हिरन अपनी सुधबुध खोकर मुँहके ग्रासको बिना चबाये ही, मुँहमें वैसे ही रखकर, कान खड़े करके, नेत्र मूँदकर सोते हुए-से और चित्र-लिखे-से निश्चल हो जाते हैं। वनमालाकी दिव्य गन्धसे समस्त वसुन्धरा भर गयी है, जड चेतन हो गये हैं, चेतन जड। ये सारी लीलाएँ मंगल प्रत्यक्ष देखता और मुग्ध होकर देखता!

एक दिनकी बात है। सन्ध्या हो रही थी। सूर्यदेव अस्ताचलको जा रहे थे। सायंकाल होते देख मंगल अपनी गायें लेकर घरको लौट रहा था। देखता क्या है कि उसका प्राणसखा उसके साथ ही लौट रहा है। उसके नेत्र मदसे विह्वल हो रहे हैं। गौओंके खुरसे उड़ी हुई धूल उसके मुखमण्डलपर तथा बालोंपर जम गयी है, इस कारण उसका मुख पके हुए बेरके समान पाण्डुवर्ण दीख रहा है, वनके पुष्पों तथा कोमल-कोमल किसलयोंकी माला पहन रखी है, गजराजके समान झूमता हुआ चल रहा है, सुवर्णके कुण्डलोंकी कान्तिसे उसके सुकुमार कपोलोंपर एक अद्‌भुत छटा छा रही है। आज मंगलसे रहा न गया। उसने चाहा कि इस अपरूप रूपको पी जाऊँ। इसलिये वह आगे बढ़ा और उस त्रिभुवनमोहनको आलिंगन-पाशमें बाँध लेना चाहा। परंतु····!!

कैसे-कैसे खेल हैं उस खिलाड़ीके! उसकी ओर न झुको तो बार-बार दरवाजा खटखटाता है, रात-दिन परेशान किये रहता है, न खाने देता है न सोने। लेकिन जब उसकी ओर प्राणोंकी हाहाकार लेकर मुड़ो, तब वह छलिया जाने कहाँ छिप जाता है और ऐसा छिपता है कि बेनिशाँ हो जाता है, लापता हो जाता है। मिलना, मिल-मिलकर बिछुड़ना और फिर बिछुड़-बिछुड़कर, एक क्षणकी झलक दिखाकर फिर छिप जाना, यह लुका-छिपी उसकी सर्वथा निराली होती है। क्षणभरमें प्रकट होगा, क्षणभरमें छिप जायगा। हृदय खोलकर मिलेगा और क्षणहीभरमें खिसक जायगा। न उसे पकड़ते बनता है न छोड़ते। जन्म-जन्मसे हम उस रूपको निहारते आये हैं, फिर भी जी नहीं भरा, हृदय नहीं अघाया।

मिलन और विरहके बीच साधनाका सोता झोंके खाता हुआ चलता रहा। मिलनकी लीला हो चुकी थी, अब विरहकी लीला होनेवाली थी। यह विरह भी तो मिलनसे कम मधुर नहीं है। प्यारेका

सब कुछ प्यारा है। उसका मिलना भी प्रिय है और बिछुड़ना भी प्रिय है। मिलना अधिक प्रिय है या बिछुड़ना, इसे कौन बतलाये। जिस प्रकार वर्षा-ऋतुके आनेपर जल बरसता है, बिजली चमकती है, मेघ गर्जना करते हैं, हवा जोरसे चलने लगती है, फूल खिल जाते हैं और पक्षी आनन्दमें डूबकर कूजने लगते हैं, उसी प्रकार प्रियतम प्रभुके दर्शन हो जानेपर आनन्दित होकर नेत्र जल-वर्षा करने लगते हैं, होठ मृदु हास्य करने लगते हैं, हृदयकी कली खिल उठती है, आनन्दके झोंकेसे मस्तक हिलने लगता है, प्रतिक्षण उस प्रिय सखाके नामकी गर्जना होने लगती है और प्रेमकी मस्ती प्रभुके गुणगानमें सराबोर कर देती है। मिलन और विरह दोनों ही साधन हरि-मिलनके ही हैं। इस आनन्दका पता न कर्मीको है न निष्कर्मीको, न ज्ञानीको है न ध्यानीको। वेद भी इसका पार नहीं पा सकते, विधिकी यहाँतक पहुँच नहीं; यह तो केवल रसिक हृदयोंके निकट ही चिर समुज्ज्वल है। यही है साधनाका शेष, यही है प्रेमकी चरम लीला। यही है योगियोंकी योग साधन, यही है भक्तोंको भक्तिकी प्राप्ति, यही है प्रेमीजनोंका पूर्ण-प्रणय-महोत्सव!

मंगलकी दशा अब कुछ विचित्र रहने लगी। मिलकर बिछुड़नेका दुःख कोई भुक्तभोगी ही अनुभव कर सकता है। मंगलसे अब न रोते बनता, न हँसते। आनन्द था मिलनकी स्मृतिका, विषाद था पाकर खो देनेका। उसके जीमें कुछ ऐसी लहरें उठ रही थीं कि उस प्यारेके बिना अब जीना बेकार है। किसी काममें उसका जी नहीं लगता। न भूख लगती, न नींद आती। रात-दिन रोता रहता, रोते-रोते कभी-कभी बीचमें अट्टहास कर बैठता। अजीब पागलकी-सी दशा थी। लोग कुछ समझ नहीं रहे थे कि क्या बात है। पिताने समझा लड़केका दिमाग फिर गया है, दवा करानी चाहिये। आस-पासके वैद्य-हकीमोंको बुलवाया! लेकिन रोग तो चिकित्सासे परेका था।

'मीराकी प्रभु पीर मिटै जब बैद साँवलियो होय।'

मंगल अपने वैद्यकी खोजमें आप ही निकल पड़ा। प्रेमियोंका हाल ऐसा ही होता है। प्रेमके अनियारे बाणसे जिसका हृदय बिंध जाता है, उसकी दशा उन्मत्तकी-सी हो जाती है। जगत्‌की कोई चर्चा उसे नहीं सुहाती। चेष्टा करनेपर भी वह कुछ बोल नहीं सकता। उसका शरीर पुलकित हो उठता है। उसके रोम-रोमसे प्रेमकी किरण-धाराएँ निकलकर निर्मल प्रेमज्योति फैला देती हैं। समस्त वातावरण प्रेममय हो जाता है। वह प्रेमावेशमें बार-बार रोता है, कभी हँसता है, कभी लाज छोड़कर ऊँचे स्वरसे गाने और नाचने लगता है। मंगलकी माँ मंगलके इस दिव्य उन्मादको कुछ-कुछ समझ रही थी। उसने देखा था कि जन्माष्टमीकी रातसे ही मंगलकी दशा पलटने लगी थी। उसे मंगलकी इस दशापर परम सन्तोष था। वह जानती थी कि वास्तविक पुत्रवती वही है जिसका पुत्र श्रीहरिके चरणोंमें अनुरक्त हो। वह अपने भाग्यको सराहती और प्रभुके चरणोंमें मस्तक टेककर नित्य यही प्रार्थना करती—'हे प्रभो! इस बालकके हृदयमें प्रेमकी आग लहकाकर आप अब इसे यों न छोड़ो, अब तो इसे सर्वथा अपना लो; मैं इसे तुम्हारे चरणोंमें आनन्दके साथ निवेदित करती हूँ। तुम इसे अब स्वीकार कर लो।'

परन्तु भगवान्‌ने तो पहलेसे ही उसे स्वीकार कर लिया था। वह शिकारी ऐसा-वैसा नहीं है। उसका निशाना खाली जाय, यह हो नहीं सकता। जिसपर उसने प्रेमबुझे तीर फेंके, वही लुट गया। घायलकी गति घायल ही जानता है या जानता है वह शिकारी। छिप-छिपकर वार करता है; कभी बहुत हलकी मामूली चोट करता है कभी गहरी—प्राण ले लेनेवाली चोट। बाण लगा हुआ हरिन जैसे छटपटाता है, वही हालत भगवत्प्रेमियोंकी होती है। वह हृदयको सीधे बेधता है और बाणको यों ही लगा छोड़ देता है। प्रेमकी गलीमें

साधक जाता तो है जी बहलानेके लिये, आँखें जुड़ानेके लिये, लेकिन वहाँ जानेपर उसे लेनेके देने पड़ जाते हैं। गरम ईख चूसनेकी-सी दशा हो जाती है—न चूसते बनता है, न छोड़ते। घायल होकर घूमता-फिरता है। उसका दर्द कुछ निराला ही होता है, वहाँ दवा और दुआ कुछ भी काम नहीं देती।

गोदावरीके तटपर जंगलमें एक छोटा-सा मन्दिर है। उसमें श्रीराधा-कृष्णकी युगल-मूर्ति विराजमान है। आस-पास तुलसीका सघन वन है—दूरतक फैला हुआ जंगल। जंगली वृक्षों और पुष्प-लताओंसे स्थानकी शोभा अत्यन्त रमणीय हो रही है। मोरों और वन्य पशुओंने वनको मुखरित कर दिया है। शान्त, स्तब्ध गोदावरीकी धारापर वनके फूल बहते हुए ऐसे लगते हैं मानो वनदेवीने भगवान् सूर्यनारायणको पुष्पोंकी अंजलि समर्पित की है। बालरविकी कोमल किरणें समस्त वनप्रान्तमें और गोदावरीके हृदयस्थलपर केलि कर रही हैं। मंगल गोदावरी-तटपर तुलसीके वनमें बैठा हुआ गद्गद कण्ठसे अपने प्राणनाथको कातरभावसे पुकार रहा है। प्रार्थना करते-करते वह मूर्च्छित होकर वहीं गिर पड़ता है। मूर्च्छित-अवस्थामें मंगलको एक दिव्य वपुधारी महात्मासे '**ॐ राधायै स्वाहा**' का षडक्षर मन्त्र प्राप्त हुआ। मन्त्र कानोंमें प्रवेशकर हृदयमें पहुँचा और वहाँ हृदयदेशमें मन्त्रकी चेतनासे एक विद्युल्लहर-सी लहराने लगी। मंगलको ऐसा प्रतीत हुआ कि शीतल विद्युत्के दिव्य अक्षरोंमें यह मन्त्र उसके हृदयमें वैसे ही प्रकट हुआ है जैसे प्रशान्त नील आकाशमें पूर्णिमाका चन्द्रमा। मंगल जब होशमें आया, तब वे महात्मा वहाँ नहीं थे, परन्तु वह मन्त्र पहलेके समान ही चेतनरूपमें विद्युत्-धाराकी तरह हृदयमें तरंगित हो रहा था। मन्त्रकी यह दिव्य लीला देख मंगल मुग्ध था। उसके रोम-रोमसे मन्त्र-राजकी कोमल किरणें प्रस्फुरित हो रही थीं और भीतर-बाहर

समान-रूपसे वह उस आनन्दसिन्धुमें डूब रहा था। आँखें खोलता तो सामने श्रीराधा-कृष्णकी मंजुल मूर्ति, आँखें बंद करता तो हृदयमें उसी युगल-मूर्तिकी ललित लीला! प्राणोंमें, श्वासोंमें, मन्त्रकी मधुर क्रीड़ा स्वयं होती रहती थी—अनायास, बिना प्रयास। वर्षों इसी रस-समाधिमें डूबा रहा। देह-गेहकी सुधबुध न थी। वनके भीतरी भागमें रहनेवाले जो कुछ लाकर उसे खिला देते, वह खा लेता; जो कुछ पिला देते, वह पी लेता।

शारदी पूर्णिमाकी मध्यरात्रि है। मंगलके हृदयमें आज अपूर्व उल्लास छा रहा है। उसने वनके पुष्पोंकी माला बनायी, तुलसीकी मंजरीकी माला बनायी। प्राणनाथ और प्रियाजीको प्रेमके साथ पहनाया। आँसुओंसे उनके चरण पखारे और लगा उन्हें एकटक निहारने। देखते-देखते उसकी दृष्टि बँध गयी, पलकें स्थिर हो गयीं; फिर क्या देखता है कि श्रीराधारानीका हृदय खुलता है। ठीक जैसे सूर्यकी किरणोंके स्पर्शसे कमलकी कली खिलती है—राधारानी मंगलको उठाकर अपने हृदयमें छिपा लेती हैं और भगवान् खड़े-खड़े मन्द-मन्द मुसकानोंकी झड़ी लगा रहे हैं। वहाँ अब मंगल नहीं है—उसने अपना सर्वस्व अपने प्राणनाथ जीवनसखाके चरणोंमें अर्पित कर दिया है और उसकी यह भेंट पूर्णतया स्वीकार कर ली गयी है।

मन्दिरके पास एक छोटा-सा चबूतरा बन गया है, जहाँ मंगल तुलसीवनमें बैठा करता था। लोग इसे मंगलदासका चबूतरा कहते हैं।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

ठाकुर मेघसिंह

ठाकुर मेघसिंह जागीरदार थे। रियासत बहुत बड़ी तो नहीं थी, परंतु नितान्त क्षुद्र भी नहीं थी। अच्छी आमदनी थी। ठाकुर साहब अक्षरोंकी दृष्टिसे बहुत विद्वान् नहीं थे, पर वैसे यथार्थ दृष्टिमें वे विद्वान् थे। विद्या वही, जो मनुष्यको सच्चे मार्गकी ओर ले जाय। जो विद्या मनुष्यको विपथगामिनी बनाकर भीषण नरकानलमें जलनेको बाध्य करती है, जिसके द्वारा जीवन अभिमान, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदिके भयानक तूफानमें पड़कर नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है, वह तो साक्षात् अविद्या है, प्रत्यक्ष तम है। ऐसी विद्यासे तो बचना ही चाहिये। ठाकुर मेघसिंह उस विनाशकारिणी विद्यासे बचे थे। उनकी विद्याने उनके जीवनको सब ओरसे प्रकाशमय बना रखा था, इससे उनका प्रत्येक कार्य मानव-जीवनके परम लक्ष्यको सामने रखकर ही होता था।

ठाकुर साहबकी प्रजाप्रियता और न्यायसे सभी लोग प्रसन्न थे। उनका प्रत्येक न्याय प्रजावत्सलता और सर्वहितकी दृष्टिसे दयापूर्ण ही होता था। उन्हें बड़े-से-बड़ा त्याग करनेमें भी किसी कठिनाईका सामना नहीं करना पड़ता था। भगवान्के मंगलविधानपर अटल विश्वास होनेके कारण उन्हें किसी भी अवस्थामें कोई उद्वेग या विषाद नहीं होता था। जहाँ विषाद या उद्वेग है, वहाँ निश्चय ही भगवान्पर अविश्वास है। ठाकुर साहब नित्य प्रसन्नमुख तथा प्रसन्नमन रहते थे। भगवान्का स्मरण तो उनके जीवनमें श्वासक्रियाकी भाँति अनिवार्य हो गया था। वे नित्य प्रातःकाल सूर्योदयसे एक पहर पूर्व उठते ही सबसे पहले भगवान्का ध्यान करते। तदनन्तर शौच-स्नानसे निवृत्त होकर सन्ध्या करते, गायत्रीका जप करते, गीता-विष्णुसहस्रनामका पाठ करते और फिर भगवन्नाम-जपमें लग जाते

थे। जपके समय भी उनका मानसध्यान तो चलता ही था। मध्याह्नके समय उनकी पूजा समाप्त होती। तब अभ्यागत-अतिथियोंको स्वयं अपने सामने भोजन करवाकर भगवत्प्रसादरूपमें स्वयं भोजन करते। इसके बाद अपनी रियासतका काम देखने कचहरीमें जाकर विराजते और बड़ी धीरता तथा बुद्धिमत्तासे सारा कार्य सँभालते तथा झगड़ोंको निपटाते। उस समय भी उनका भगवत्-स्मरण अखण्ड चलता ही रहता। वे भगवत्-चिन्तन करते हुए समस्त कार्य करते।

संसारमें सब तरहके मनुष्य होते हैं। ठाकुर साहबकी पवित्र जीवनचर्या और उनका साधु स्वभाव भी किसीके लिये ईर्ष्या और द्वेषका कारण बन गया। तमसाच्छन्न हृदयकी कुटिलतासे दृष्टि बदल जाती है। फिर उसे अच्छेमें बुरे, देवतामें राक्षस, साधुमें असाधु और सत्यमें मिथ्याके दर्शन होते हैं। बुद्धि बिगड़नेपर क्रियाका बिगड़ना स्वाभाविक ही है। इसी स्वभाव-विपरीतताका शिकार ठाकुर साहबका ही एक सेवक हो गया। वह जातिका चारण था और उसका नाम था भैरूँदान। वह ठाकुरका बड़ा विश्वासी था और पहले उसके व्यवहारमें भी कोई दोष नहीं था; परंतु किसी दैवदुर्विपाकसे उसका मन बिगड़ गया और मन-ही-मन वैरबद्ध-सा होकर वह ठाकुर साहबको मारनेकी बात सोचने लगा। एक दिन ठाकुर साहबको कचहरीमें देर हो गयी थी। रात्रिका पहला पहर था। कृष्ण पक्ष था। बाहर सब ओर अँधेरा छाया था। उसीमें ठाकुर साहब निकले और कुछ दूरपर स्थित अपने रनिवासकी ओर जाने लगे। भैरूँदान उनके साथ था। पापबुद्धिने जोर दिया, भैरूँदानने कटार निकाली, एक बार हाथ काँपा; परन्तु पापकी प्रेरणासे पुनः सावधान होकर उसने अँधेरेमें अपने साधुस्वभाव स्वामीपर वार कर दिया। परन्तु भगवान्‌का विधान कुछ और था, उसी क्षण सामनेसे दौड़ता हुआ एक साँड़ आया। ठाकुर तो आगे बढ़ गये और उसका एक सींग भैरूँदानकी

छातीमें लगा। कटार हाथमें लिये भैरूँदान गिर पड़ा, हाथ उलट गया था, इससे कटार जाकर नाकपर लगी, नाकका अगला हिस्सा कट गया। भैरूँदान चिल्लाया। क्षणोंमें यह घटना हो गयी। ठाकुर साहब समीप ही थे। चिल्लाहट सुनकर लौटे। साँड़ तो आगे निकल गया था। इन्होंने जमीनपर पड़े हुए भैरूँदानको उठाया। वह छातीपर लगी सींगकी चोटसे तथा नाककी पीड़ासे बेहोश हो गया था। ठाकुर साहबने पुकारकर रनिवाससे नौकरोंको बुलाया। भैरूँदानको उठाकर वे रनिवासमें ले गये। बाहर चौपालमें चारपाई डलवाकर उसे सुलवा दिया। दीपक आ ही गया था। देखा तो उसकी मुट्ठीमें खूनसे भरी तेजधार कटार है और नाकसे खून बह रहा है। मुट्ठी ऐसी जकड़ गयी थी कि कटार उसमेंसे गिरी नहीं। ठाकुर यह दृश्य देखकर अचरजमें पड़ गये। उन्हें साँड़के द्वारा गिराये जानेका तो अनुमान था, पर मुट्ठीमें कटार रहने तथा नाकके कटनेका पूरा रहस्य वे नहीं जानते थे। यद्यपि उन्होंने अँधेरेमें भैरूँदानको अपनेपर वार करते हुए-से देखा था। लेकिन इस रहस्यको जाननेकी चिन्तामें न पड़कर वे उसे होशमें लानेका यत्न करने लगे। मुट्ठी खोलकर कटार निकाली। नाक धोयी, उसपर चूना लगाया। छातीपर कोई दवा लगायी और सिरपर पानी डालकर स्वयं हवा करने लगे। घरके नौकरोंके सिवा और कोई वहाँ था नहीं, इसलिये ठकुराइन भी वहाँ आ गयी थीं। वह भी हवा करने लगीं। इस सेवा और उपचारसे भैरूँदानको भीतरी होश तो जल्दी हो गया; परंतु छातीकी पीड़ाके मारे उसकी आँखें नहीं खुलीं, वह वैसे ही पड़ा रहा। इधर ठकुराइनने एक प्रसंग छेड़ दिया और उनमें नीचे लिखी बातें हुईं—

ठकुराइन—चारणजीकी छातीमें साँड़के सींगसे चोट लग गयी, यह तो होनीकी बात है; पर इन्होंने अपने हाथमें कटार क्यों ले रखी थी? कहीं आपपर वार करनेका तो इनका मन नहीं था?

ठाकुर साहबने भैरूँदानको अपने ऊपर वार करते-से देखा था; परंतु उनके साधु मनने उसपर कोई सन्देह नहीं आने दिया। उन्होंने अनुमान किया कि अँधेरेमें मेरी रक्षाके लिये ही इन्होंने कटार हाथमें ले रखी होगी। अबतक तो इनके मनमें कोई बात थी ही नहीं; परंतु ठकुराइनके प्रश्नसे उन्हें फिर कुछ जागृति-सी हुई, पर सन्देहशून्य पवित्र मनमें सन्देह क्यों होता? उन्होंने कहा—

'तुम पगली तो नहीं हो गयी? भैरूँदान मेरा अति विश्वासी साथी है। 'यह मेरे ऊपर कटार चलावेगा' इस प्रकारका सन्देह करना भी पाप है। सम्भव है, इसने मेरी रक्षाके लिये कटार हाथमें ले रखी हो।'

ठकुराइन—आपकी रक्षाकी वहाँ क्या आवश्यकता थी। मेरे पापी मनमें तो यही जँचती है कि चारणके मनमें बुराई थी, पर भगवान्ने आपकी रक्षा की।

ठाकुर—देखो, मेरी समझसे तो तुमको ऐसा नहीं सोचना चाहिये। किसीपर भी सन्देह करना पाप है। फिर भला, तुम तो यह जानती ही हो कि हमलोगोंको जो कुछ भी भोग प्राप्त होते हैं, सब हमारे श्रीगोपालजीकी देख-रेखमें तथा उन्हींके विधानके अनुसार होते हैं। वे परम मंगलमय हैं, अतएव उनके विधान भी मंगलमय हैं। यदि कटार लगती तो भी उनके मंगलविधानसे ही लगती। न लगी तो भी मंगलविधानसे ही। मैं तो समझता हूँ कि भैरूँदानको जो चोट लगी है, इससे भी इसका कोई मंगल ही हुआ है। मुझे मारनेका प्रयास यह क्यों करता? यदि किया है तो उसमें मेरे किसी पूर्वकर्मके कारण कोई प्रेरणा इसके मनमें हुई होगी। यदि यह भी नहीं है और सचमुच इसके मनमें कोई दुर्भाव ही आया है तो मंगलमय भगवान्के मंगलविधानसे इस चोटके द्वारा उसका प्रायश्चित्त हो गया। इसे जो आगे भीषण नरक—यन्त्रणा भोगनी पड़ती, उसका यहीं थोड़ी-सी चोटमें ही भुगतान हो गया। मुझे तो पूरा विश्वास है कि भगवान्

सबका मंगल ही करते हैं। मैं अपने भगवान्‌से कातर प्रार्थना करता हूँ—'दयामय प्रभु! भैरूँदान मेरा परम विश्वासी है। मेरे मनमें कभी किसी प्रकार भी किसीकी या इसकी बुराई करनेकी कोई भावना न आयी हो तो इसकी पीड़ा अभी शान्त हो जाय और इसके मनमें यदि कोई दुर्भावना आयी हो तो उसका भी समूल नाश हो जाय। यह यदि इसके किसी पापका फल हो तो नाथ! वह फल मुझको भुगता दिया जाय और इसकी शारीरिक तथा मानसिक पीड़ा और उसके कारणोंका विनाश हो जाय।'

यों प्रार्थना करते-करते ठाकुर साहबकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी। उनकी इस दशाको देखकर तथा उनके पवित्र भावोंसे प्रभावित होकर ठकुराइनका हृदय भी द्रवित हो गया। उसने भी रोते हुए भगवान्‌से प्रार्थना की—'नाथ! मैंने जो चारणजीपर सन्देह किया, इस पापके लिये मुझे क्षमा कीजिये और चारणजीको शीघ्र पीड़ासे मुक्त कर दीजिये।'

भैरूँदानको भीतरी होश था ही। उसने यह सारी बातें सुनीं—ज्यों-ज्यों सुन रहा था, त्यों-ही-त्यों उसका मन बदलता जा रहा था और उसके मनमें अपनी करनीपर पश्चात्ताप हो रहा था। पश्चात्तापकी आगसे उसका हृदय कुछ शुद्ध हो गया। फिर जब ठाकुर साहबने भगवान्‌से प्रार्थना की, तब तो उसका हृदय सर्वथा निर्मल हो गया और क्षणोंमें ही उसकी छातीकी पीड़ा भी सर्वथा शान्त हो गयी। उसने आँखें खोलीं और उठकर वह ठाकुर साहबके चरणोंमें लोट गया। ठाकुर साहब इस बीच भगवान्‌के ध्यानानन्द सुधासागरमें डूब गये थे। उन्हें बाहरकी कोई सुधि नहीं थी। ठकुराइन भी भावावेशमें बेसुध थीं। कुछ देर चारण दोनोंके चरणोंमें लोटता रहा। जब भगवत्प्रेरणासे ठाकुर-ठकुराइनको बाह्य चेतना हुई, तब उन्होंने अपने चरणोंपर पड़े भैरूँदानको अश्रुओंसे चरण पखारते पाया। ठाकुरने उसको उठाकर हृदयसे लगा दिया।

भैरूँदानने अपनेको छुड़ाते हुए रोकर कहा—'मालिक! मेरे-जैसा महापापी मैं ही हूँ। आप मुझ पापीका स्पर्श मत कीजिये। मैं नरकका कीड़ा महापामर व्यर्थ ही आपमें दोष देखकर आपको मारने चला था। भगवान्ने बड़ी दया की जो साँड़के रूपमें आकर मेरे नीच आक्रमणसे आपको बचा लिया। आपको क्या, उन्होंने नाक काटकर उचित शिक्षा दी एवं मुझको बचा लिया और ऐसा बचाया कि मेरे पाप-पादपके मूलका ही उच्छेद कर दिया। यह सब आपकी सहज साधुता और भगवत्प्रीतिका चमत्कार है। मेरा मन पश्चात्तापकी आगसे जल रहा है। मैं इसका समुचित दण्ड चाहता हूँ। तभी मुझे तृप्ति होगी।'

ठाकुर साहबने हँसते हुए कहा—'भैरूँदान! तुम जरा भी चिन्ता न करो। तुम मुझे जैसे पहले प्यारे थे, अब उससे भी बढ़कर प्यारे हो। तुम्हारे इस आचरणने मेरे भगवद्विश्वासको और भी बढ़ाया है। इसलिये मैं तो तुम्हारा बड़ा उपकार मानता हूँ और अपनेको तुम्हारा ऋणी पाता हूँ। जिस किसी भी निमित्तसे भगवान्में विश्वास उत्पन्न हो और बढ़े, वह निमित्त देखनेमें यदि असुन्दर भी हो, तो भी वस्तुतः बड़ा ही सुन्दर, श्रेष्ठ तथा वन्दनीय है। तुम इसमें निमित्त बने। इसलिये तुम मेरे परम हितकारी बन्धु हो। तुम दण्ड चाहते हो, अच्छी बात है। मैं दण्ड देता हूँ, तुम्हारे शरीरको ही नहीं, तन-मन-वचन तीनोंको देता हूँ। जब तुम चाहते हो, तब उसे सानन्द ग्रहण तो करोगे ही। हाँ, यदि तुम ग्रहण करोगे तो मुझको और भी ऋणी बना लोगे। दण्ड यह है कि शरीरसे किसीका कुछ भी बुरा न करके सदा भगवद्भावसे सबकी सेवा किया करो, वचनसे किसीको कभी कठोर वाणी न कहकर सत्य, हितकर, मधुर और परिमित वाणीसे तथा भगवन्नामगुणादिके दिव्य कीर्तन-गायनसे सबको सुख पहुँचाया करो और मनसे द्रोह, दम्भ, काम, क्रोध, लोभ, विषाद और जगत्-चिन्तनरूपी विषसमूहको निकालकर प्रेम, सरलता, सचाई, प्रसन्नता,

सन्तोष और नित्य भगवत्-चिन्तनादिकी अमृतधाराके द्वारा सबका मंगल किया करो और यह सब भी किया करो केवल भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये ही। यही यथार्थ त्रिदण्ड है। जो इनको धारण करता है, वही त्रिदण्डी है। तुम इन तीनों दण्डोंको धारण कर सदाके लिये त्रिदण्डी बन जाओ। मैं तुम्हारा बड़ा उपकार मानूँगा।'

इन सारी बातोंके होनेमें ठाकुर साहबकी भगवत्स्मृति नित्य अक्षुण्ण बनी रही। कहना नहीं होगा कि भैरूँदानका जीवन ही पलट गया और ठाकुर मेघसिंहजीके बर्ताव और संगसे वह परम साधुताको प्राप्तकर नित्य भगवद्विश्वासी बन गया।

ठाकुर मेघसिंहके एक ही कुमार था—सज्जनसिंह। सोलह वर्षकी उम्र थी। शील, सौन्दर्य और गुणोंका भण्डार था वह। अभी तीन ही महीने हुए उसका विवाह हुआ था। भगवान्‌के विधानसे वह एक दिन घोड़ेसे गिर पड़ा और उसके मस्तकमें गहरी चोट आयी। थोड़ी देरके लिये तो वह चेतनाशून्य हो गया, परन्तु कुछ ही समय बाद उसको चेत हो आया। यथासाध्य पूरी चिकित्सा हुई, पर घावमें कोई सुधार नहीं हुआ। होते-होते घाव बढ़ गया और उसका जहर सारे शरीरमें फैल गया। अब सबको निश्चय हो गया कि सज्जनसिंहके प्राण नहीं बचेंगे। सज्जनसिंहसे भी यह बात छिपी नहीं रही। उसके चेहरेपर कुछ उदासी आ गयी। ठाकुर मेघसिंह पास बैठे विष्णुसहस्रनामका पाठ कर रहे थे। उसे उदास देखकर उन्होंने हँसते हुए कहा—'बेटा! तुम्हारे चेहरेपर उदासी क्यों है? अभी तुम मेरे पुत्र हो, मेरी जागीरके मालिक हो, तुम्हें मेरे कुँअरका पद मिला है। यह सब तुम्हारे गोपालजीके मंगलविधानसे ही हुआ है। अब उन्हींके मंगलविधानसे तुम साक्षात् उनके पुत्र बनने जा रहे हो। अब कुँअरका पद मिलेगा और तुम दिव्यधामकी जागीरीके अधिकारी बनोगे। यह तो बेटा! हर्षका समय है। तुम प्रसन्नतासे जाओ,

मंगलमय प्रभुसे मेरा नमस्कार कहना और यह भी कहना कि 'मेघसिंहके आपके धाममें तबादलेकी भी कोई व्यवस्था हो रही है क्या ? मुझे कोई जल्दी नहीं है, क्योंकि मुझे तो सदा चाकरीमें रहना है, चाहे जहाँ रखें परन्तु इतना अवश्य होना चाहिये कि आपकी चाकरीमें हूँ, मुझे इसका स्मरण सदा बना रहे।'

'बेटा! यहाँके संयोग-वियोग सब उन लीलामयके लीला-संकेतसे होते हैं और होते हैं हमारे मंगलके लिये। इस बातका जिसको पता है, वह न तो दुःखके संयोगसे दुःखी होता है न सुखके वियोगसे। उसे तो सभी समय, सभी संयोग-वियोगोंमें, सभी दुःख-सुखोंमें सदा अखण्ड सुख, अखण्ड शान्ति और अखण्ड तृप्तिका अनुभव होता है। तुम भगवान्‌के मंगल संकेतसे ही यहाँ आये और उनके मंगल संकेतसे मंगलमयकी चरणधूलि प्रत्यक्ष प्राप्त करने जा रहे हो। इसमें जरा भी सन्देह मत करो। संशयवान्‌का ही पतन होता है। विश्वासी तथा श्रद्धालु तो हँसते-हँसते प्रभुके धाममें चला जाता है। तुम श्रद्धाको दृढ़ताके साथ पकड़े रखो, विश्वासको जरा भी इधर-उधर मत होने दो। यहाँसे जाकर तुम वहाँ उस अपरिसीम अनन्त आनन्दको प्राप्त करोगे कि फिर यहाँकी सभी सुखकी चीजें उसके सामने तुम्हें तुच्छ दिखायी देंगी। रही कुँअरानीकी बात सो उसकी कोई चिन्ता मत करो। वह पतिव्रता है। यहाँ साधुभावसे जीवन बिताकर वह भी दिव्यधाममें तुम्हारे साथ ही श्रीगोपालजीकी चरणसेविकाका पद प्राप्त करेगी। बेटा! विषयोंका चिन्तन ही पतनका हेतु होता है, फिर स्त्री-पुरुषके विषयी जीवनमें तो प्रत्यक्ष विषय-सेवन होता है। प्रत्यक्ष नरकद्वारोंमें अनुराग हो जाता है। अतएव वह पतनका निश्चित हेतु है। भगवान्‌ने दया करके उन नरकद्वारोंकी अनुरक्ति और सेवासे कुँअरानीको मुक्त कर दिया है। वह परम भाग्यवती और साध्वी है, इसीसे इसपर यह अनुग्रह

हुआ है। वह तपोमय जीवन बितायेगी और समयपर भगवान्‌के दिव्यधाममें तुमसे आ मिलेगी। तुम्हारी माताको तो भगवान्‌के मंगलविधानपर अखण्ड विश्वास है ही। उसे तो सर्वत्र सर्वथा मंगल ही दीखता है। बेटा! तुम सुखसे यात्रा करो। स्वयं हँसते-हँसते और सबको हँसाते-हँसाते हुए जाओ। जब सबको यह विश्वास हो जायगा कि तुम वहाँ जाकर यहाँकी अपेक्षा कहीं अनन्तगुनी विशेष और अधिक सुखकी स्थितिको प्राप्त करोगे, तब तुम्हारे वियोगमें दुःखका अनुभव होनेपर भी सच्चे प्रेमके कारण तुम्हारे सुखसे वे सभी परम सुखी हो जायँगे। पर यह विश्वास उन सबको तभी होगा, जब तुम विश्वास करके हँसते-हँसते जाओगे।'

ठाकुरकी इन सच्ची बातोंका सज्जनसिंहपर बड़ा प्रभाव पड़ा। उसका मुखमण्डल दिव्य आनन्दकी निर्मल ज्योतिसे उद्‌भासित हो उठा। उसके होठोंपर मधुर हँसी छा गयी, उसका ध्यान भगवान् गोपालजीके मधुर श्रीविग्रहमें लग गया और उसके मुखसे भगवन्नामका उच्चारण होने लगा। फिर देखते-ही-देखते ब्रह्माण्ड फटकर उसके प्राण निकलकर दिव्यधाममें पहुँच गये।

ठाकुर, ठकुराइन, कुँअरानी—सभी वहाँपर उपस्थित थे। परन्तु सभी आनन्दमग्न थे। मानो अपने किसी परम प्रिय आत्मीयको शुभ आनन्दमय स्थानकी शुभ यात्रामें सहर्ष सोत्फुल्ल हृदयसे विदा दे रहे हों।

× × × ×

ठाकुर, ठकुराइन और कुँअरानी—तीनोंने ही अपने जीवनको और भी वैराग्यसे सुसम्पन्न किया। भगवत्-रंगमें विशेषरूपसे रँगा और अन्तमें यथासमय इस अनित्य मर्त्यलोकसे सदाके लिये छूटकर भगवद्धाममें प्रयाण किया।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

ठाकुर किशनसिंह

बीकानेर-राज्यान्तर्गत गारबदेसर एक ताजीमी ठिकाना था। भक्त किशनसिंहजी वहींके ठाकुर थे। ठाकुर साहब श्रीमुरलीधरजीके बड़े भक्त थे। जनतामें प्रसिद्ध है कि उनको प्रत्येक दिन पूजनके पश्चात् सवा माशा सोना भगवान्से मिला करता था और वे उक्त सोनेको नित्य ब्राह्मणोंको दान कर दिया करते थे। अद्यावधि मूर्तिके अधरोष्ठपर सोनेका चिह्न है। एक दिन ठकुरानी साहिबाने हठ करके सोना अपने पास रख लिया था, उसके बाद मूर्तिद्वारा सोना प्राप्त नहीं हुआ। ऐसी ही अनेक बातें उनके सम्बन्धमें जनताद्वारा सुननेमें आती हैं। उनमेंसे कुछका पाठकोंको परिचय कराया जाता है। सम्भव है कि आजकलके वैज्ञानिक विद्वान् इन बातोंपर विश्वास न करें, परन्तु जो भगवान्के भक्त हैं, उनके हृदयमें इनका अक्षर-अक्षर प्रेम और भक्तिका उद्रेक उत्पन्न किये बिना न रहेगा; क्योंकि भगवत्-प्रभावकी ये बातें जितनी भक्तलोग समझते हैं, उतनी और कोई नहीं। अस्तु!

ठाकुर साहब ईश्वरकी शपथका बहुत मान रखते थे, यहाँतक कि कई बार दुष्ट प्रकृतिवालोंने उनको शपथ दिलाकर धोखा देनेका भी प्रयत्न किया था।

एक बार कुछ चोरोंने उनको यह शपथ दिला दी थी कि 'ठाकुर साहब! हम ऊँटोंको ले जाते हैं। यदि आपने किसीसे कहा तो आपको भगवान्की आन (शपथ) है।' ठाकुर साहबने किसीसे नहीं कहा, परन्तु चोर ऊँटोंको तमाम रात दौड़ाकर सबेरे वापस उसी गाँवके पास आ गये। प्रातःकाल चोरोंने पूछा—'यह

कौन-सा गाँव है?' लोगोंद्वारा गारबदेसर सुनकर उनको बहुत ही आश्चर्य हुआ और पकड़े जानेके भयसे वे भयभीत होकर ऊँटोंको वहीं छोड़कर भाग गये।

एक साल गारबदेसरके चारों ओर सभी जगह वर्षा हो गयी थी, परन्तु वहाँ एक बूँद भी नहीं पड़ी। इससे ठाकुर साहबने कहा कि—

सो कोसाँ बिजली खिंवें, यामें कूण सँदेह।
किसनाकी तृसना मिटै, जो आँगन बरसे मेह॥

भगवान्ने उनकी प्रार्थनापर तुरंत ध्यान दिया। उसी समय बादलोंकी घटा छा गयी और अच्छी वर्षा हुई।

ठाकुर साहब जागीरदार होते हुए भी हमेशा काठकी तलवार ही म्यानमें रखा करते थे। एक बार किसी चुगलखोरने बीकानेर-नरेशसे कह दिया कि गारबके ठाकुर समयपर क्या काम आयेंगे। वे तो काठकी तलवार लटकाये रहते हैं। इसपर दशहरेके उत्सवमें, जब कि सभी जागीरदार मौजूद थे, महाराजा साहबने कोई प्रसंग उठाकर सबको अपनी-अपनी तलवार दिखानेकी आज्ञा दी। सभीने अपनी-अपनी तलवारें निकाल लीं, परंतु ठाकुर साहब इतने डरे कि वे थर-थर काँपने लगे और मन-ही-मन ईश्वरसे प्रार्थना करने लगे, 'हे भगवन्! आज किशनकी इज्जत आपके ही हाथ है।' और डरते-डरते उन्होंने तलवारको म्यानसे निकाला, परंतु तलवारके निकालते ही राजसभामें तलवारकी चमकसे सबकी आँखोंमें चकाचौंध छा गयी। तब महाराजा साहबने उस चुगलखोरको बहुत ही बुरा-भला कहा। यह देखकर ठाकुर साहबने केवल इतना ही कहा कि 'इन्होंने तो सत्य ही कहा था, परंतु ईश्वरने इनको झूठा कर दिया है। इसमें इनका कुछ भी अपराध नहीं है।'

एक बार ठाकुर साहब किसी यात्रामें महाराजा साहबके साथ जा रहे थे। राहमें पूजाका समय हो जानेसे ठाकुर साहब कपड़ा ओढ़कर घोड़ेपर ही भगवान्‌की मानसिक पूजा करने लगे। पूजामें आप भगवान्‌को दहीका भोग लगानेकी तैयारी कर रहे थे, इसी बीचमें महाराजा साहबकी दृष्टि उधर पड़ गयी। महाराजा साहबने दो-तीन बार पुकारकर कहा, 'किशनसिंह! नींद ले रहे हो क्या?' ठाकुर साहब पूजामें मग्न थे। उनको महाराजा साहबका पुकारना सुनायी ही नहीं पड़ा। इससे महाराजाने रुष्ट होकर अपने घोड़ेको उनके घोड़ेके पास ले जाकर उनका कपड़ा खींचकर दूर कर दिया। फिर महाराजा साहबने उधर दृष्टि डाली तो उन्हें बड़ा ही आश्चर्य हुआ; क्योंकि घोड़ा और काठी सबपर दही-ही-दही फैला हुआ था। उन्होंने ठाकुर साहबसे पूछा, 'किशनसिंह! यह क्या है?' कुछ समय तो ठाकुर साहब चुप रहे, परंतु महाराजा साहबके अधिक आग्रह करनेपर उन्होंने स्पष्ट बता दिया कि 'महाराज! मैं मानसिक पूजनमें भगवान्‌को दहीका भोग लगा रहा था, पर आपके वस्त्र खींचनेसे मैं चौंक उठा। अकस्मात् हिल जानेसे मेरा मानस दही गिर गया। वही दही भगवान्‌की लीलासे प्रत्यक्ष हो गया मालूम होता है।' यह सुनकर महाराजा साहबने गद्‌गद होकर उनसे कह दिया कि आप घर चले जायँ और भगवान्‌का भजन करें।

एक बार सरकारी बकाया देनेमें देरी होनेसे इनपर महाराजा साहबने रुष्ट होकर कहा—'किशनसिंह! यह ठीक नहीं है, समयपर सरकारी लगान जमा हो जाना चाहिये।' ठाकुर साहबके मुँहसे निकल गया—'दीपावलीतक ठहरिये, आपके रुपये जमा करके ही मैं दीपावलीका पूजन करूँगा।' यों कहकर ठाकुर साहब घर लौट आये। परन्तु समयपर रुपये इकट्ठे न हो सके।

ठीक दीपावलीको सन्ध्यातक उन्होंने इधर-उधरसे जुटाकर रुपये एकत्र किये। पूजन करनेका समय हो जानेसे भीतरसे आदमी बुलाने आया, पर वे बिना ही पूजन किये रुपये लेकर घोड़ेपर सवार हो गये और सुबहतक साठ मील चलकर बीकानेर पहुँचे। महलमें उनको देखते ही महाराजा साहबने उनसे पूछा, 'किशनसिंह! तुम कल ही जानेवाले थे न? क्या बात है? गये कैसे नहीं? रातको तुम्हारी तबियत तो नहीं बिगड़ गयी? महाराजा साहबकी बातें सुनकर ठाकुर साहबने कहा—'अन्नदाताजी! मैं तो अभी-अभी रुपये जमा कर देनेके लिये सीधा गाँवसे चला आ रहा हूँ। मैं कल यहाँ था ही नहीं, आपको किसी दूसरेकी बातका ध्यान रह गया होगा।'

यह सुनकर महाराजा साहबने कहा, 'तुम क्या कहते हो? अभी रुपये जमा कराने आये हो? रुपये तो तुमने कल ही जमा करा दिये थे।'

ठाकुर साहबने जवाब दिया कि 'नहीं अन्नदाता! मैं तो कल गाँवमें ही था। आप यह क्या फर्माते हैं?' अन्तमें महाराजा साहबने रोकड़में जमा किये हुए रुपये और उनके हस्ताक्षर दिखाये। उनको देखते ही ठाकुर साहबकी आँखें प्रेमाश्रुसे भर गयीं और उनके मुँहसे केवल इतना ही निकला—'हाँ, हस्ताक्षर तो मेरे-जैसे ही हैं।' ठाकुर साहब अपने भगवान्‌की लीलाको समझकर गद्‌गद हो गये। बीकानेरनरेश भी भक्तकी महिमा और भगवान्‌की भक्तवत्सलता देखकर मुग्ध हो गये। ठाकुर साहबने लौटकर भगवान् मुरलीधरजीका मन्दिर बनवाया, जो अभीतक उनकी कीर्तिको बढ़ा रहा है।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

सच्चा वैष्णव भक्त गूदड़बाबा

(१)

विक्रम-संवत् १७८१ के कुम्भकी घटना है। इस पुण्य-पर्वपर स्नानके लिये लाखों गृहस्थ-विरक्त भारतवर्षके विभिन्न प्रान्तोंके यात्री तीर्थराज प्रयागमें एकत्र हैं। शृंगेरी-मठके शंकराचार्य स्वामी सोमनाथाचार्य तथा अन्यान्य वैष्णवाचार्य अपने सहस्रों अनुयायियोंके साथ त्रिवेणी-पुलिनमें आसन लगाये हुए हैं। कितने ही राजा-रईस, सेठ-साहूकार, विद्वान्-ब्राह्मण तथा अन्य साधारण धार्मिक हिंदू कुम्भवास कर रहे हैं। काम-कौतुकी-जातिके संगीतकला-कुशल गुणिजनोंके भी कतिपय संकीर्तन-समाज आये हुए हैं। वे अपनी संगीतपटुतासे श्रद्धालु यात्रियोंको अपनी कलाका चमत्कार दिखाते हुए अलौकिक आनन्दका अनुभव करा रहे हैं। चारों ओर उनकी चर्चा चल रही है और भूरि-भूरि प्रशंसा हो रही है।

आज माघ-कृष्णा त्रयोदशी है। काम-कौतुकियोंका कीर्तन हो रहा है। दर्शकोंकी भीड़ लगी हुई है। वे अपने नृत्य-गानसे सबको मोहित कर रहे हैं। विशेषता यह है कि वे भगवद्विषयक ही गान करते हैं। उनके इस समाजमें कतिपय नव-विवाहित दम्पति भी सम्मिलित हुए हैं, उनके साथ उन्होंने भी नृत्य-गान किया है; क्योंकि वर्षके भीतर परिणीत हुए तद्देशीय वर-वधुओंको उस वर्ष दक्षिणमें योगदान करनेकी प्रथा है।

सब अपनी-अपनी संगीतपटुता दिखा चुके। अब प्रसिद्ध संगीताचार्या तपस्विनी श्रीमती गुणमंजरी देवीकी बारी है। तपस्विनीजी अपनी तपश्चर्या और संगीत-कुशलताके लिये बहुत प्रसिद्ध हैं। अनेक कृच्छ्र-चान्द्रायणका अनुष्ठान वे कर चुकी हैं। केवल दो-चार फल खाकर रह जाती हैं। अब उन्हींका संकीर्तन

होनेवाला है। इस अवसरपर शृंगेरी-मठाधीश स्वामी सोमनाथाचार्यजी भी समुचित सम्मान-पुरस्सर पधराये गये हैं। तपस्विनीजी रंग-पीठपर आयीं। उनकी मधुर स्वरभंगियाँ पवनसे अठखेलियाँ करती हुई आकाशमें लहराने लगीं। पाद-विन्यासके साथ पृथ्वी थिरकने लगी। चारों ओर स्तब्धता छा गयी। उनके लयमें सभीके मनोंका मानो लय हो गया। एकाएक आकाशमें मेघ उमड़ आया, बूँदें पड़ने लगीं। बिजली कड़कने लगी। एक तो माघका महीना, जाड़ोंके दिन, दूसरे वर्षा! ठंडक बढ़ गयी। सबकी तन्मयता और एकाग्रता भंग हुई। सब आतुर-से दीखने लगे और भागनेको उत्सुक हुए। इस समय शृंगेरी-मठाधीशने सबको सावधान करते हुए कहा—'आपलोग अधीर न हों, यह मेघ स्वाभाविक मेघ नहीं है, किंतु तपस्विनीके स्वरालापजन्य है। अतः क्षणिक है।'

स्वामीजीकी घोषणा सुनकर दर्शकगण सावधान हुए, फिर एक अद्भुत चमत्कार हुआ। आकाशसे, मेघमण्डलसे निकली हुई सौदामिनीकी भाँति एक सुन्दरी आती हुई दिखायी दी और क्षणमात्रमें सबके देखते-देखते वह पृथ्वीपर उसी संगीत-समाजमें उतर पड़ी। तपस्विनीसे मिलकर नृत्य करने लगी। उसके नृत्य और गानसे सबके मन एक साथ एक अलौकिक आनन्दमय जगत्‌में विचरण करने लगे। टकटकी बँध गयी, सन्नाटा छा गया। केवल उन देवियोंके पाद-विन्यासमें नूपुरोंका कलरव और गानमें उनकी स्वर-भंगियोंके अतिरिक्त और कोई शब्द नहीं सुनायी देता था। कुछ देरतक यह अलौकिक आनन्द छाया रहा। फिर संगीतका विसर्जन हुआ और वह देवांगना उड़कर देखते-देखते गगन-गह्वरमें अदृश्य हो गयी।

तदनन्तर श्रीशंकराचार्य स्वामीका उपदेश आरम्भ हुआ। वे बोले—'आपलोगोंने उस देवांगनाको देखा। उसे आकाशसे उतरते

हुए सबने प्रत्यक्ष देखा और उसके नृत्य-गानका भी पूर्णतया अनुभव किया। इसका कारण क्या आपने समझा? इसका कारण यह है कि इस पवित्र पर्वयोगपर पुण्यतोया त्रिवेणीमें स्नान करनेसे आपलोग निष्पाप हो गये हैं। तभी सूक्ष्म देवलोककी उस देवीके आपको दर्शन हो सके! अन्यथा ऐसा सम्भव नहीं था। इस तमोमय कलियुगके मनुष्योंमें स्वभावतः स्थूलता अधिक होनेसे उन्हें दिव्य जीवोंके दर्शन नहीं होते। अतः यह सविशेष कारणवशात् एक असाधारण घटना है। हमलोग देवत्वसे मनुष्यत्वको प्राप्त हुए हैं। हमारे पूर्वपुरुष देवलोकसे भूतलपर अवतरित हुए और वहीं गये। हम भारतीयोंका मूलस्थान स्वर्ग ही है। वहींसे हम भी अपने पूर्वजोंकी तरह आये हैं और वहीं जाना है। इसी हेतु वैदिक-कर्मोंका यथाविधि अनुष्ठान किया जाता है। उन कर्मोंमें दिव्य शक्तियाँ व्याप्त होती हैं। अनुष्ठानसे वे विकसित होकर कर्तामें अपूर्वरूपसे प्रविष्ट हो जाती हैं और अन्त समय उनके बलसे वह ऊर्ध्वलोकको खिंच जाता है। यही सामान्यतः भारतवर्षीय आर्यजातिका अपूर्व वैशिष्ट्य है। इसके परे सर्वोत्कृष्ट धर्म जीवमात्रका परम लक्ष्य मोक्ष है, जिसमें सम्पूर्ण दुःखोंका आत्यन्तिक अभाव है, आवागमनका राहित्य है, भव-बन्धनकी निवृत्ति है। इसे भागवत-धर्म कहते हैं। इसका एकमात्र लक्ष्य भगवान् ही हैं। वैदिक-कर्म इस विशेष धर्मके साधक हैं। जैसे सामान्य धर्म-कर्म-यज्ञका उद्देश्य देवत्व है, वैसे ही इस विशेष धर्मका लक्ष्य भगवत्व है। भगवत्पदको प्राप्त होना ही जीवमात्रका उद्देश्य है। जैसे स्वर्ग देवत्वका क्षेत्र है, वैसे ही भगवद्धाम अपराजित भगवत्वका देश है। स्वर्गमें पतनका भय है, सम्पूर्ण अमरत्व नहीं है, परंतु परम दिव्य त्रिगुणातीत देशकालाद्यनवच्छिन्न भगवद्धाम अभय-पद है। वह निश्चल, निर्विकार और नित्य है।

वहीं पूर्ण अमरत्व है। परंतु वह पद अत्यन्त दुर्लभ है; क्योंकि वह वाङ्मनोगोचरातीत है। परमात्माका शब्द ब्रह्मरूप ही विश्वमें प्रकट है। वही सम्पूर्ण सृष्टिको अपनी आनन्दमयी सर्वव्यापिनी अन्तर्गतिसे जीवन प्रदान कर रहा है। वह राम-नाम है। प्रणव भी उसीका भेद है। परंतु यह नियताधिकार है और राम-नाम सर्वाधिकार है। प्राणिमात्रको उसके जपका अधिकार है। जैसे प्रणव कर्मका साधक होता हुआ ब्रह्मज्ञानका उत्पादक है, वैसे ही राम-नाम पुरुषोत्तमकी भक्तिका परितोषक होता हुआ परमात्मज्ञानका परिपोषक है। अतएव उसका जप सबको करना चाहिये। कलियुगमें यही संसृति-संस्तरणका सर्वोपरि सुगम साधन और विधि-निषेधरहित अमोघ दिव्य मन्त्र है, कल्याण-कल्पतरुका बीज एवं फल दोनों है।

'इस अवसरपर स्नानके भी कुछ विधानका निर्देश करना आवश्यक जान पड़ता है। स्नानके दिन ब्राह्म-मुहूर्तमें हरिस्मरणपूर्वक उठकर शौचादिसे निवृत्त हो साधारण स्नान कर लेना चाहिये। तदनन्तर अपना नित्यकृत्य सन्ध्या-वन्दनादि करके राम-नामका उच्चारण स्वगत-भावसे करते हुए शान्तिपूर्वक अपने-अपने समाजके साथ स्नान-यात्रा करनी चाहिये। फिर तटपर जाकर त्रिवेणीको प्रणाम एवं उसके पुण्य-सलिलको शिरोधार्य करके उसमें प्रवेश करना उचित है। उस दिन मौन रहना चाहिये। इससे उस सुकृतका यथावत् सम्पादन होता है। यदि सम्पूर्ण दिन और रात न कर सके तो स्नान करनेतक तो अवश्य ही मौनावलम्बन करना उचित है। मौनसे सुकृतिकी धारणा और रक्षा होती है, उससे वृत्ति अन्तर्मुखी होती है और अन्तःकरणमें सत्त्वका संचार होता है। पुण्यतोयाके योगसे जो पवित्रता उत्पन्न होती है, वह स्थूल शरीरको क्षालित करती हुई सूक्ष्म शरीरमें प्रवेश कर जाती

है और उसके मलको भी धो देती है। इससे सत्त्वगुणका विकास और तमका नाश होता है। सत्त्वगुणके प्रकाशकी किरणें जिन कर्मोंमें व्याप्त होती हैं, उन्हें ही सुकृत कहते हैं और जिन जल-स्थलोंमें वास करती हैं, वे तीर्थ तथा पुण्यक्षेत्र कहलाते हैं। उनके अनुष्ठान और सेवनसे अन्तःकरण शुद्ध होता है और आत्म-प्रकाशके ग्रहण करनेका पात्र बनता है। एक बात और आप जान लें। स्नान करके जब आपलोग अपने-अपने घर जायँ, तब अपने चरण स्वयं धोयें, किसी दूसरेसे न धुलायें; क्योंकि इससे पुण्यकी हानि होती है। वहाँ हवन और साधु-ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें दान-मानसे सन्तुष्ट करें। इस प्रकार आपकी यह स्नानविधि पूर्ण होगी।

इसी समय एक साधु आकर खड़े हो गये और कहने लगे— 'मैं बहुत भूखा हूँ। क्या आपलोगोंमेंसे ऐसा कोई पुण्यात्मा है जो मुझे पेटभर भोजन करा सके?' सब लोग उनकी बात सुनकर चकित रह गये कि 'क्या इस महासमारोहमें इनको भरपेट भोजन ही नहीं मिला!' सब बोल उठे—'जो वस्तु कहिये और जितनी कहिये आपके भोजनके लिये प्रस्तुत की जाय।' यह सुनकर उन साधुने कहा—'और हम क्या खायँ, जो कुछ खायेंगे, वह मल-मूत्र होकर निकल जायगा। यदि आपलोग हमको सन्तुष्ट करके खिलाना चाहते हैं तो हम और कुछ नहीं खायेंगे, केवल आप सब लोग अपने पर्वस्नान-समयका 'राम-नाम' हमें दे दीजिये। उसीसे हमारा पेट पूर्णतया भरेगा। कहिये, भरियेगा साधुका पेट?' सब लोग उनकी भिक्षा सुनकर अवाक् रह गये, किसीसे कुछ कहते न बना। जब चारों ओर सन्नाटा छा गया, तब स्वामी सोमनाथाचार्यजीने कहा—'अच्छा बाबा! हम तुम्हें अपना 'राम-नाम' देते हैं। उनकी प्रतिज्ञा सुनकर धीरे-धीरे और लोग भी

कहने लगे—'हम भी देते हैं, हम भी देते हैं।' सबकी प्रतिज्ञा सुनकर उन साधुने कहा—'हाँ, अब हमारा पेट भर गया! आपके इस महादानसे आपके उस सुकृतविशेषकी कुछ भी हानि नहीं हुई, किन्तु उसकी और वृद्धि हो गयी। राम-नाम आपका कल्याण करे।'

तदनन्तर रामध्वनि करके सब लोग अपने-अपने आसनको गये।

(२)

आज माघ बदी अमावस्या है। त्रिवेणी-तटपर स्नानका विराट् समारोह हुआ है। चारों वर्णों और चारों आश्रमोंके यात्री जुटे हैं। विरक्त वैष्णवोंके दोनों दल, तपस्वी और दण्डी अपनी-अपनी सजधजसे उपस्थित हैं। सभी उदाराशय, शान्तिशील, दयालु और श्रद्धालु दिखायी देते हैं। सबके मुखमण्डलोंपर तेज और दीप्ति झलक रही है। उस समय श्रीरामानन्दीय विरक्तोंके पूर्वज श्रीसम्प्रदायावलम्बी विरागी महात्माओंको ही तपस्वी वैष्णव कहते थे (जो शिखा-सूत्रधारी होते थे) और (शिखा-सूत्र-त्यागी) संन्यासी दण्डी वैष्णव कहलाते थे। वे दोनों दल परस्पर प्रेमपूर्वक स्नानके पुण्यकृत्यका सम्पादन कर रहे हैं। तटपर बहुत अधिक भीड़ है, क्योंकि उसमें सभी श्रेणीके यात्री हैं। प्रायः सब सज्जन, सभ्य एवं श्रद्धालु प्रतीत होते हैं। सबके हृदयोंमें धर्मके प्रति आदर है। कोई किसीको धक्का नहीं देता, सभी सबको सादर अवकाश देते हैं। अहंकारवश कोई किसीके पथका अतिक्रमण करके आगे बढ़नेकी चेष्टा नहीं करता। सभी स्त्रियोंके पथको बचाते हैं और आवश्यकता पड़नेपर सभी एक-दूसरेकी सहायता करनेका हृदयमें भाव रखते हैं। इतनी बड़ी भीड़में कोई भी अधम उपद्रव दिखायी-सुनायी नहीं देता। सब

श्रद्धा और प्रसन्नतासे सुकृत-रक्षामें सावधान हो स्नान कर रहे हैं। पण्डोंको दान-दक्षिणा दे रहे हैं। वे भी बिना कुछ आपत्ति किये, जो कुछ श्रद्धासे जो कोई दे देता है, उसे आशीर्वाद देते हुए वह ले लेते हैं। यात्रियों और यजमानोंको सुविधा देनेका पूरा ध्यान रखते हैं।

इतनेमें त्रिवेणीकी धारामें एक अपूर्व दृश्य दिखायी दिया। सब लोग कौतूहलाक्रान्त हो उसी ओर एकटक देखने लगे। धारामें एक सुन्दर कमल अथवा गुलाबके फूल-सा कोई पदार्थ बहता दृष्टिगोचर हुआ। वह तैरता हुआ आकर एक जगह धारापर रुक गया और वहीं स्थिर हो गया। सभी देख-देख चकित होते थे कि वह क्या है? यदि वह टूटा हुआ फूल है तो एकाएक बहता हुआ ठहर क्यों गया? सो भी धारापर! उसे तो बहना ही चाहिये, धारामें रुका कैसे? इसी कौतुकावह समस्याको सुलझानेमें लोग भाँति-भाँतिकी कल्पनाएँ कर रहे हैं। सबके ध्यानको उसने आकर्षित कर लिया है, सबके नेत्र उसीपर लगे हुए हैं। इतनेमें विदर्भ देशके सामन्त विजयपाल राष्ट्रकूटने अपनी सुन्दर-सुविशाल नौका मगायी और उसपर सवार होकर धाराकी ओर उधर ही गये, जिधर वह फूल-सा पदार्थ था। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा तो कुछ और ही दृश्य दिखायी दिया। वह कुसुमवत् प्रतीयमान वस्तु एक अत्यन्त सुन्दरी गौरीरूपा कन्या थी। सात-आठ वर्षोंसे अधिक उसकी अवस्था नहीं थी। उसे उठाकर राष्ट्रकूट महोदयने अपनी गोदमें लिया और नौकाको तटकी ओर मोड़ा। जनता उत्सुकतासे नौकाकी ओर देखने लगी। जब तटपर वह आ लगी, तब यात्रियोंकी भीड़ उमड़ पड़ी। सब उस शिशुको एकाएक निहारने लगे। कोई कहता—'शीतसे कुण्ठित हो गयी है, इसे आग तपाओ।' कोई कहता—'यह जल पी गयी

है, इसे चाकपर घुमाओ।' अग्नि भी सिकायी गयी, चाक भी आया। जब चाकपर चढ़ानेको लोग तुले, तब उस कन्याने इंगित करके निषेध किया। चाकपर फिराना रुका। एक ब्राह्मण, जो तटपर पूजा कर रहे थे; शालग्राम भगवान्‌का चरणामृत ले गये। उसे कन्याने पी लिया। तदनन्तर विजयपाल राष्ट्रकूट उसे अपने शिविरमें ले गये और अपनी रानीकी गोदमें दे दिया।

राष्ट्रकूट-दम्पतिके कोई सन्तान न थी। अतः वे उस कन्याको त्रिवेणीका प्रसाद समझकर प्रसन्न हुए। उन लोगोंने बहुत प्रयत्न किया; परंतु उसने न कुछ खाया और न पीया और न वह कुछ बोली। हाँ, हाथसे वह कुछ संकेत करने लगी, परंतु किसीने कुछ समझा नहीं। रानीने राष्ट्रकूट महोदयको बुलाया और उन्हें उसका संकेत दिखाया। पहले वे भी नहीं समझ सके। फिर एकाएक उनके ध्यानमें ईश्वरीय प्रेरणासे उसका कुछ मर्म आया। उन्होंने समझा कि वह किसी बड़े महात्माके पास ले चलनेको कहती है। अस्तु, वे उसे शृंगेरी-मठाधीश स्वामी सोमनाथाचार्यके पास ले गये और उसका वृत्तान्त कहा। कन्याने स्वामीजीसे देववाणीमें कहा—'किसी सद्वैष्णवको बुलाइये।' स्वामीजी बोले—'वैष्णव तो मैं भी हूँ।' फिर उस कन्याने कहा—'हाँ वैष्णव तो हैं, परंतु वैष्णवका स्वरूप नहीं प्राप्त किया है।' स्वामीजीने समझा कि तिलक आदि बाह्य चिह्नविशेषसे इसका तात्पर्य है, जो प्रायः तपस्वी (विरागी) वैष्णव धारण करते हैं। अतएव उन्होंने अपने एक पट्टशिष्यसे कहा कि वह संघमेंसे किसी उत्कृष्ट तपस्वी वैष्णवको ले आवे। वे महात्मा पीनस लेकर वैष्णव-समुदायमें गये और स्वामीजीका आदेश कहा। उसे सुनकर कतिपय वैष्णव महात्मा चलनेको उत्सुक हुए। तब उन दूत स्वामीने कहा—'पीनस तो एक ही आया है।

आपलोग, जिन्हें इसमें बैठाना चाहें, उन्हें बैठा दें और अन्य महात्मागण पैदल चलें, तो सब लोग चल सकते हैं।' ऐसा ही हुआ, बहुत-से वैष्णव चले और स्वामी सोमनाथाचार्यके पास आये। उन्होंने सादर सबको बैठाया और कन्याका परिचय दिया।

उस अपूर्व कन्याने एक कटोरा तथा शालग्राम माँगा। स्वामीजीने अपना शालग्राम और पार्षदका चाँदीका कटोरा दिला दिया। कन्याने कटोरेमें गंगाजल भराया और उसमें शालग्राम भगवान्‌को छोड़ दिया। वैष्णवताकी परीक्षा उसने यह निर्धारित की कि जिसके देखनेसे शालग्रामजी तलेटीसे जलके ऊपर आ जायँ, वही सच्चा वैष्णव है।

उस कटोरेमें ताकनेके लिये सबसे प्रार्थना की गयी। सबने उसका अवलोकन किया, परंतु शालग्रामजीने तलेटी न छोड़ी, तब स्वामीजीने स्वयं जाकर कटोरेमें देखा। उनके देखनेसे शालग्रामजीने पेंदेको छोड़ दिया और ऊपर उठकर कटोरेके मध्य जलमें आ गये। परंतु जलके ऊपर नहीं आये। तब शृंगेरी-मठाधीशने अपने कतिपय विद्वान् और विवेकी शिष्योंको निर्देश किया कि वे बचे-बचाये वैष्णवोंमें अन्वेषण करें और सावधानतापूर्वक पहचानकर सद्‌वैष्णवको लावें।

वे दण्डी महात्मा सम्पूर्ण वैष्णवसमुदायों-(खालसों-)में घूमे; परंतु कोई वैष्णव नहीं मिला अथवा उनकी दृष्टिमें नहीं जँचा। हाँ, एक किनारे एक गूदड़बाबा मिले, जिनमें ऊर्ध्वपुण्ड्र आदि कोई भी वैष्णवताका चिह्न नहीं था। न तो वे तपस्वी अथवा विरागी वैष्णव जान पड़ते थे और न दण्डी ही, वे अपने निराले बेढंगे ढंगके महात्मा थे। एक कुबड़ी लकुटी, एक फटी-कटी गुदड़ी और एक फूटी-सी तुम्मी—बस, यही उनका सामान था। उनसे स्वामीजीके शिष्योंने प्रार्थना की और गुरुकी आज्ञा

सुनायी। गूदड़बाबा बोले, अनखाकर बोले—'बाबा! मुझे ले जाकर क्या करोगे? मैं कहाँ जाऊँ? तुम्हारे स्वामीजीने वैष्णवको बुलाया है, बहुत-से वैष्णव मिलेंगे, ले जाओ। मुझे क्यों छेड़ते हो! मैं तो एक दीन भिक्षुकमात्र हूँ।' स्वामीजीके गणोंने कहा—'जितने गये थे, उनमेंसे वैष्णवताकी परीक्षामें कोई भी उत्तीर्ण नहीं हुआ, कोई भी सच्चा वैष्णव नहीं निकला। इससे आचार्यचरणने आप-जैसे छिपे हुए वास्तविक वैष्णव महात्माओंकी खोजमें भेजा है। अतः कृपया आप हमारे प्रयत्नको सफल कीजिये और चलनेका कष्ट उठाइये।' गूदड़बाबा बोले—'तुम्हारे स्वामीजीने जाने क्या कहा है! मुझमें कौन-सा वैष्णवताका लक्षण है? तुम व्यर्थमें क्यों अटक-भटक रहे हो? जाओ और कहीं ढूँढ़ो। अपना समय नष्ट न करो।' उन्होंने फिर भी प्रार्थनाएँ कीं, लेकिन बाबाजी टस-से-मस न हुए। वे दण्डी महात्मा भी मिले हुए शिकारकी तरह भरपूर उनके पीछे पड़ गये। उन्होंने कहा—'अब हम कहाँ किसको खोजते फिरें? आप ही कृपा कीजिये, फिर हम आपको यहाँ पहुँचा देंगे। यदि आप यों नहीं चलेंगे तो हम आपको श्रद्धापूर्वक उठा ले चलेंगे। किसी-न-किसी तरह हम आपको वहाँ ले ही चलना चाहते हैं। हमारे अन्तरात्माकी ऐसी ही प्रेरणा हो रही है। अब आप कृपया अधिक न उलझिये।' उनका ऐसा प्रेमाग्रह देखकर गूदड़बाबा बोले—'अच्छा भाई! चलो, फिर क्या करें, तुम नहीं मानते, तुल गये हो।' ऐसा कहकर वे उठे और उनके साथ हो लिये।

(३)

गूदड़बाबा आ गये। शृंगेरी-मठाधीशने प्रेमपूर्वक उनका स्वागत किया, वे आसनसे उठकर खड़े हो गये। सब वैष्णववृन्द उन्हें देखकर चकित रह गये कि ये अच्छे वैष्णव बुलाये गये हैं।

कुछ लोगोंने तो कहा कि 'लानेवालोंने तंग आकर जो मिला, उसे ही लाकर खड़ा कर दिया और किसी प्रकार गुरुकी गरीयसी आज्ञाका पालन किया। भला, ये लोग तो जिसे-तिसे लाये और जैसे-तैसे आदेशका पालन किया, पर ये स्वामी भी अच्छे रहे! कैसा आचार्यवत् सम्मान किया है!' इसी प्रकार भाँति-भाँतिकी जल्पनाएँ-कल्पनाएँ लोग करने लगे।

गूदड़बाबाको समादरसहित स्वामीजीके शिष्य उस कटोरेके पास ले गये जिसमें शालग्रामजी थे। पर बाबाजीने तो आँखें ही बंद कर लीं। तब उनसे आँखें खोलने और उस कटोरेमें देखनेकी प्रार्थना की गयी। किसी प्रकार कहते-सुनते उन्होंने आँखें खोलीं और कटोरेकी ओर दृष्टिनिक्षेप किया। उनके देखते ही भगवान् शालग्राम जलके ऊपर आ गये। 'धन्य-धन्य' और 'जय-जय' की ध्वनि चारों ओर गूँज उठी। लोग कहने लगे—'यही सच्चे वैष्णव हैं।' गूदड़ीके उस अमूल्य लालकी परख हो गयी, सच्चे वैष्णव वे निकले, जिनकी वैष्णवताकी कोई कल्पना भी नहीं करता था। ऐसे निःस्पृह-निरपेक्ष बेलाग फक्कड़ोंको कौन पहचान सकता है?

काहू आसहू न राखैं कछु पासहू न राखैं
नहिं काहूसौं भाखैं न माखैं छाहँ घामकी।
खालमैं खली है खिली त्रिबली उदर-भाल
निकली नली है अचली है चाम-छामकी॥
आह नहीं दाह नहीं चाहहू उछाह नहीं
काहूकी न राह परवाह नहीं दामकी।
तुमड़ी फुटी है 'बिन्दु' कटिकी पटी है फटी
पेटकी कटी है पै रटी है 'रामनाम' की॥

संसारमें अधिकांश दम्भ और पाखण्ड ही फैला हुआ है; उसमें सचाई छिपी हुई है, उसे कोई-कोई आँखवाले ही परखते हैं—

दिलवाले हैं हरचन्द जिगरवाले हैं
यह सच है निगाहोंमें असरवाले हैं।
जो देखनेकी चीज थी देखी न गई
यों कहनेको हमलोग नजरवाले हैं॥

—आजर

न वे आँखें ही सर्वत्र हैं और न वे रत्न ही—

शैले शैले न माणिक्यं मौक्तिकं न गजे गजे।
साधवो न हि सर्वत्र चन्दनं न वने वने॥

× × ×

हाट-हाट हीरा नहीं घर-घर राजा नाहिं।
'चतुर्भुज' विरही रामके कोऊ एक जग माहिं॥

तब वह कन्या उन सच्चे वैष्णव भक्तका चरणामृत लेनेके लिये आगे बढ़ी। पर वे बेढब महात्मा जल्द कब माननेवाले? उन्होंने कहा—'नहीं, नहीं, यह सब क्या?' उस समय उस अलौकिक कन्याने बड़े ही करुणार्द्रभावसे उनसे कहा—'भगवन्! मैं वैष्णवी देवी हूँ। त्रिवेणी-स्नानके निमित्त मैं आयी थी। परन्तु स्पर्शदोषसे मेरी शक्ति नष्ट हो गयी। वह आपके चरणोदक-पानसे जाग्रत् हो जायगी और मैं अपने लोकको चली जाऊँगी। इसी हेतु आपकी कृपाकी भिक्षा माँग रही हूँ। महज्जन उदाराशय और दयालु होते हैं, वे परदुःखकातर होते हैं। मेरी दीन दशापर आप दया कीजिये और अपना चरणामृत मुझे लेने दीजिये।'

सब लोग उस कन्याकी दीन वाणी सुनकर करुणार्द्र और विस्मित हो गये। बाबाजी बोले—'अच्छा, बता, हमको भी अपने लोकको ले चलेगी?' कन्याने कहा—'हाँ, अवश्य, आप-जैसोंके लिये तो वह है ही। वहाँ तो आपको रहना ही चाहिये। यह कलियुगकी पृथ्वी तो आपके योग्य भी नहीं। परंतु भगवन्! यह

गूदड़ी तो उतार दीजिये और लकुटी रख दीजिये। केवल केलेका कौपीन धारण किये रहिये और फिर चलिये।' पर वे क्यों ऐसा करने लगे? वे बोले—'नहीं, नहीं, ये सब लिये चलेंगे।' क्या करे, हारकर उसने कहा—'अच्छा, जैसी आपकी इच्छा, इन्हें भी ले चलिये।'

बाबाने चरणामृत दे दिया। तत्काल उस देवीकी शक्ति जाग्रत् हो उठी और उसमें उड़नेकी स्फूर्ति उत्पन्न हो गयी। वह आकाशमार्गमें उठी और गूदड़बाबासे बोली—'अच्छा, अपनी लकुटी हमें पकड़ाइये।' बाबाने लकुटीका कूबड़सिरा उसे थमाया और उसके साथ उड़ चले। सब लोग कौतूहलपूर्वक यह अभूतपूर्व दृश्य देखते रह गये।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

एक बाल भक्त

श्रीवृन्दावन-धाममें एक वृद्ध संत रहते थे। द्रुमलता ही उनका आहार था। कुंजवनमें सतत विचरण करना ही उनकी चर्या थी। सदा महारसमें प्राप्त रहना, तनकी सुधि बिसारे रहना और अश्रु-प्रवाहसे कपोलोंको भिगोते रहना उनका स्वभाव था। उनमें बड़ा आकर्षण था। जहाँ वे बैठ जाते, वहाँके पशु-पक्षी उन्हें घेर लेते। कभी बछड़ा उनके चरणोंमें लोटता और कभी पक्षियोंका जोड़ा उनके हाथपर बैठ जाता। वे उन्हें प्यार करते, दुलराते और उनसे बातें करते थे। 'जाओ चरो-चुगो, अब मैं जाता हूँ।' कहकर उन्हें विदा कर देते और स्वाभाविक मस्तीमें उठकर चल देते। अपने गुरु महाराजकी आज्ञासे वहाँ मैं गया और सेवामें स्वीकार किये जानेकी प्रार्थना की। उस समय महापुरुष एक वृक्षके नीचे टहल रहे थे। वहाँ बड़ी सुगन्ध फैली हुई थी, हालाँकि वहाँ कोई पुष्प-वृक्ष नहीं था। यह चरित देखकर मैं चकित रह गया। महात्माने मेरी प्रार्थनापर ध्यान दिया। कहा—'अच्छे आये! अन्त समयके साथी। रहो, जो सेवा तुमसे हो सके, करो। यहाँ तो अभी कुछ सेवा है ही नहीं। पर चेत रखना वह प्राण-प्यारा भूलने न पावे। रामनामकी ध्वनि जगाते रहना। यही मेरी सेवा है। सुनो, चिड़िया क्या गा रही है?—'राम रटो, राम रटो।' इस अमृतवाणीको सुनकर मेरा हृदय उछलने लगा। उसी समय कहींसे मुरलीकी तान सुन पड़ी। फिर जो मस्तीका रंग मुझपर चढ़ा, उसका वर्णन करनेकी योग्यता ही मुझमें नहीं रही। मेरा परोक्ष और अपरोक्ष ज्ञान, ध्यान, धारणा सब उस गोपियोंके दुकूल चुरानेवालेने अपहरण कर लिया। मैंने कहा—'सब सम्पत्ति तो ले ही ली, रहा हृदय। उसे भी छबि दिखलाकर हर लेते तो छुट्टी मिलती।' बाबाने कहा—'अरे! उस सुदूर विटपावलीकी ओर देखते क्यों

नहीं; वहीं तो वह त्रिभंगी वंशी बजा रहा है। अहा हा! कैसी छटा है? आँखोंमें लावण्य और अधरोंमें मधुरिमा।' मेरी दृष्टि उधर फिरी। दर्शन करते ही मेरा हृदय निकलकर उस छबि-समुद्रमें हिलोरें लेने लगा। मैं अपने अस्तित्वको खो बैठा। फिर क्या हुआ, मैं कुछ नहीं जानता। जब चेतना हुई, तब मैंने देखा कि महात्माजी हाथ पकड़कर मुझे उठा रहे हैं और कह रहे हैं—'बच्चा! राम-राम कहो, देर हुई जाती है।' मैंने अपना माथा बाबाके चरणोंमें रख दिया। मैंने कहा—'लोग कहा करते हैं कि सेवा करनेसे मेवा मिलता है। यहाँ मैंने कुछ भी सेवा नहीं की, केवल सेवा करनेकी लालसा लेकर आया था, किंतु आपकी कृपासे अनायास भरपेट खानेको मेवा मिला।' बाबाने कहा—'उठो, चलो, यमुना-तटपर चलें। वहाँ तुमसे कड़ी सेवा ली जायगी।' मैं हर्षित हो उठा और बाबाके साथ-साथ यमुनातटपर पहुँचा। वहाँ किनारे बैठकर बाबाने कहा—'देखो, यह शरीर बहुत जीर्ण हो गया। मैं अभी चोला बदलूँगा। तुम घबराना नहीं। जब कपड़ा पुराना हो जाता है, तब उसे बदल देना ही उचित है। मैं वैकुण्ठमें नहीं जाऊँगा। फिर जन्म लूँगा। कहाँ जन्म लूँगा सो तुम्हें बताये देता हूँ। सालभर बाद तुम वहाँ आना। भुजा और नाभिपर जो लांछन है, वह उस शरीरपर रहेगा, देखकर पहचान लेना।' मैं तो इन बातोंको सुनकर सन्न हो गया। बाबाने फिर कहा—'जब तुम मुझे शिशुरूपमें मिलना, तब यह त्रयोदश अक्षरवाला मन्त्र—'*श्रीराम जय राम जय जय राम*' मेरे प्रति उच्चारण करना'—

श्रियं रामं जयं रामं द्विर्जयं राममीरयेत्।
त्रयोदशाक्षरो मन्त्रः सर्वसिद्धिकरः स्मृतः॥

मैंने इस मन्त्रको कण्ठ कर लिया। तब अनायास बाबाजीने शरीर त्याग कर दिया। भगवत्पार्षदोंके साथ वैकुण्ठमें जानेसे इनकार कर दिया और पितृयानपर चढ़कर चन्द्रलोकको प्रस्थान

किया। भगवान्‌के पार्षद यह देखकर चकित रह गये। एकने कहा भी—***'संतकी मौज, मुक्ति निरादर भक्ति लुभाने।'*** 'जब स्वयं वैकुण्ठनाथ उनके पीछे-पीछे डोलते हैं, तब वे वैकुण्ठ लेकर क्या करेंगे?' दूसरे पार्षदने कहा। इस प्रकार बातें करते हुए वे दिव्य विमान लेकर वापस गये। बाबाजीके प्रसादसे यह सब काण्ड होते हुए अपनी आँखों देखा और दिव्य पुरुषोंकी वाणी सुननेका अधिकारी हुआ। तदनन्तर मैंने बाबाके बताये हुए मन्त्रको सावधानतापूर्वक कण्ठ करके बाबाकी अन्त्येष्टि क्रिया करके काशीके लिये प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर श्रीगुरु महाराजसे सब वृत्तान्त निवेदन किया। सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने बहुत-बहुत आशीर्वाद दिया। सालभरके बाद महाराजने फिर आज्ञा दी कि 'बाबाके बताये हुए पतेसे उस ग्राममें जाकर शिशुका वृत्तान्त जान आओ।' मैं भी यही चाहता था। मैं चल पड़ा। उस गाँवमें गया। पता लगा कि अमुक गृहस्थके घर ऐसा सुन्दर और सुशील शिशु पैदा हुआ है कि दूध पीनेके लिये भी नहीं रोता। मैंने अनुमान किया कि ऐसे शिशु महापुरुष ही हो सकते हैं। मैं वहाँ पहुँचा। द्वारपर बैठ गया। भीतरसे एक कन्या भीख लेकर आयी। मैंने कहा कि 'संन्यासी बना-बनाया भोजन करते हैं, अमनियाँ लेकर बनाते-खाते नहीं।' यह सुनकर वह बहुत प्रसन्न हुई। भीतर गयी। फिर जल लेकर आयी, चरण पखारकर भीतर लिवा ले गयी। सुन्दर आसनपर बैठाकर उसने प्रेमसे मुझे भोजन कराया। भिक्षा करके जब मैं बाहर आया और चौकीपर बैठा, तब वही कन्या गोदमें शिशुको लिये हुए आयी। अंगभूत लांछनको देखकर मैं पहचान गया। मन-ही-मन प्रणाम करके मैंने उस शिशुको अपनी गोदमें ले लिया। उस समय बड़ा ही आनन्द प्राप्त हुआ। मैंने त्रयोदशाक्षर मन्त्रका उच्चारण किया। शिशु घूरकर मेरी ओर देखने लगा। इससे मुझे अपूर्व संतोष हुआ। कुछ

देरतक बच्चेसे लाड़ लड़ाकर मैंने उसे फिर कन्याकी गोदमें दे दिया। तबतक वह शिशु बराबर मेरी ओर ताकता ही रहा। उस समयकी अपनी अवस्था क्या कहूँ? न टलते बने, न टालते बने। जब वह कन्या बच्चेको लेकर भीतर चली गयी, तब मैं वहाँसे उठा और गाँवके बाहर एक पोखरेपर जाकर चलदल वृक्षके नीचे आसन लगाया। दूसरे दिन मैं काशीको लौट गया। श्रीगुरु महाराजसे शिशु-वृत्तान्त कह सुनाया और अमोघ आशीर्वाद प्राप्त किया।

चार वर्ष बाद फिर वहाँ जानेकी आज्ञा हुई। मेरे जीमें उत्सुकता थी ही, केवल आज्ञाकी देर थी। मैं तुरंत चल पड़ा। चलते समय श्रीगुरु महाराजने उपदेश दिया कि 'अबके उस गाँवमें कुटी बनाकर रहना और बाल-संतकी लीला देखना।' इस आदेशसे मैं बहुत प्रसन्न हुआ। उस ग्राममें पहुँचकर उसी वासुदेव वृक्षके नीचे एक झोंपड़ी डालकर रहने लगा। प्रतिदिन स्नान-ध्यान करके शिशु-द्वारपर पहुँच जाता, बच्चेके साथ खेलता और भिक्षा करके चला आता। एक दिन अपूर्व घटना घटित हुई। शिशुकी दो बहिनें थीं—बेला और चमेली। बेलाने एक तोता पाल रखा था। जाड़ेके दिन थे। महावीरजीके चबूतरेके नीचे बेला शिशुको खेला रही थी। एक पिंजड़ेमें तोता भी वहीं था। मैं वहाँ उसी समय पहुँचा। मन्त्रोच्चारणपूर्वक शिशुका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। गम्भीर बालकने गम्भीर वाणीसे एक तत्त्वगर्भित पद्य कहा। जैसे-जैसे वह उसे सुस्पष्ट शब्दोंमें कहता जाता था वैसे-वैसे तोता, बेला और मैं मन्त्र-मुग्धकी तरह उसे दुहराते जाते थे। वह पद्य इस प्रकार है—

बिलसत कमल पर इक प्रान॥
कौन सर सों कमल उपजा कहाँ छिति परमान।
कवन भँवरा जलज जोहै परखि लेहु सुजान॥

शेष कार्य अशेष कारण परे आतम आन।
संत सदगुरु दया होतहि सहज प्रगटत ज्ञान॥

तदनन्तर सुग्गा पिंजड़ेसे निकलकर बालककी भुजापर बैठ गया। उस अद्‌भुत बालकने उसे पकड़कर अंजलिमें बैठा लिया और उठकर *'श्रीराम जय राम जय जय राम'* गा-गाकर नाचने लगा। पैंजनी और किंकिणी बजकर ठीक-ठीक ताल-स्वर देने लगीं। बेलाने देखा कि भैया नाचते-नाचते थक गया है, उसे गोदमें उठाकर वह भी वही मन्त्र गाकर नाचने लगी। मुझसे भी नहीं रहा गया। मैंने बालकको उसकी गोदसे लेकर कंधेपर चढ़ा लिया और वही मन्त्र गाकर मैं भी नृत्य करने लगा। उस गान और नृत्यमें जो सुख मिला, उसकी कल्पना चक्रवर्ती राजा भी नहीं कर सकते। इतनेमें आस-पासके लोग-लोगाई आकर्षित होकर आ गये और बालक मेरे कंधेसे उतर पड़ा। शुकको पिंजड़ेमें पधरा दिया और आप चुपचाप पालथी मारकर बैठ गया। बेला भी शान्त बैठी थी और मैं भी लीलाके रहस्यपर गम्भीरतापूर्वक विचार करता हुआ मौन साधकर बैठ गया। दर्शक बेचारे टुकुर-टुकुर देखते ही रह गये। उस शान्तिके वातावरणमें किसीसे कुछ पूछनेका साहस भी किसीको नहीं हुआ। शनैः-शनैः शान्तिका पाठ पढ़ते हुए वे अपने-अपने धंधेमें लग गये। मैं अपने मनकी स्थितिको बुद्धिके सहारे सँभालता रहा। सम्पूर्ण घटनाका सिंहावलोकन करनेपर मैंने यही निश्चय किया कि बाल भक्तकी चित्-शक्तिके ही प्रभावसे सारी लीला हुई है। रहस्यज्ञ होनेसे मुझे इस अद्‌भुत लीलामें कुछ आश्चर्य नहीं हुआ, परंतु बेला संदेहमें पड़ गयी और बहुत डर गयी। उसके मनमें यह बात बैठ गयी कि भैयाके अंगपर कोई देवता सवार हो गया है। उसने मुझसे अपने विचारका समर्थन करानेके लिये कहा—'स्वामीजी, देखिये! भैया कितना बड़ा नादान है, अभी तुतलाकर

बोलता है, कुछ पढ़ा-लिखा नहीं, वह एकबारगी पण्डित-पुरुखाकी तरह विष्णुपद गाने लगा। यह कितने बड़े आश्चर्यकी बात है। जो अनुमानसे भी परेकी बात है, वही हुई। हो-न-हो इसके सिरपर थोड़ी देरके लिये किसी पण्डितका भूत सवार हो गया था। उसने हम सबको नचा डाला। अब भूत उतर गया है। देखिये, चुपचाप बैठा हुआ है। मानो कुछ हुआ ही नहीं है। मैंने उस देवीसे पूछा—'इस नृत्य-गानमें तुमको सुख प्राप्त हुआ है कि दुःख? उसने कहा—'अपार सुख, जैसा कभी मिल नहीं सकता।' मैंने उससे कहा—'जब तुमको सुख मिला है, तब जान लो कि भूत नहीं सवार हुआ है, भगवान् सवार हुए हैं, क्योंकि भूत दुःख देता है और भगवान् सुख देते हैं। भगवान् तो हमारे-तुम्हारे सबके हृदयमें बैठे हुए हैं, वही सब लीला करते हैं, हमलोग श्रीहरिके हाथकी कठपुतली हैं। वही भगवान् हमारी रक्षा करते हैं। फिर, डर किस बातका?' बेलाकी समझमें यह बात आ गयी, वह प्रसन्न हुई। मैंने उसको चेता दिया कि 'इस घटनाकी चर्चा किसीसे मत करना, मन-ही-मन स्मरण करके उसका आनन्द लेना, इसीमें तुम्हारा कल्याण है।' वह बालकको लेकर घर गयी और मैं भी भिक्षा लेकर अपनी कुटीपर आ गया।

जैसे भगवान्‌के बालचरित सुखदायी हैं, वैसे ही संतों-भक्तोंकी बाललीलाएँ भी कम सुखप्रद नहीं; क्योंकि भक्त और भगवन्तमें कुछ भी अन्तर मानना भारी भूल है।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

नान्हूँ भगत

श्रीअयोध्याधामसे लगभग आठ कोस पूर्व सरयूजीके किनारे एक सेरवाघाट नामक स्थान है, वहीं शृंगी ऋषिका आश्रम है, जो अयोध्यान्तर्गत सोलहवाँ तीर्थ माना जाता है। मैं जिन भक्तकी चर्चा करना चाहता हूँ, उनकी जन्मभूमि इसी स्थानके आस-पास किसी गाँवमें थी। गाँवका नाम मुझे याद नहीं रहा। यह भक्त गायें चराया करते थे। शृंगी ऋषिके आश्रमपर सन् १८५७ ई० वाले गदरके समयतक रामलीला हुआ करती थी। इससे बचपनमें सरयूतटपर गायें चराते समय रामलीलाके दिनोंमें रामलीला देखनेका इन्हें वर्षोंतक सौभाग्य मिलता रहा। जब रामलीला बंद हो जाती थी, तब गायोंको फैले हुए चरागाहमें छोड़कर हमारे ये चरवाहे बालक भक्त एकान्तमें बैठकर घंटों आँखें मूँदे श्रीराम-लक्ष्मणका ध्यान किया करते थे।

भक्तजीको लोग 'नान्हूँ भगत' कहा करते थे। ये जातिके अहीर थे। जब गदरका हो-हल्ला मचा, तब बेचारे फैजाबाद जिलेसे भागकर बस्ती जिलेमें गोपियापार नामक मौजामें घर बाँधकर रहने लगे। इनकी माता तो कुछ दिनोंतक जीवित थीं, परंतु पिता बचपनमें ही मर गये थे। इनका विवाह गोपियापारमें ही हुआ था। पत्नी भी सचमुच पूरी भक्तिमती थी। इनके लगभग चौदह बीघा खेत था, उसीसे जीविका चलती थी। कुछ बच्चे पैदा हुए, परंतु वे शीघ्र ही चल बसे थे। अतएव केवल दो ही मूर्ति रहते और खेतीसे जीवन-निर्वाह करते थे। कुटीपर कोई साधु-संत आ जाता तो श्रद्धासे उसकी सेवा-शुश्रूषा करते और अधिकांशमें रामनामका जप किया करते। सालमें एक बार श्रीमद्भागवतकी कथा सुना करते थे। मैं अपने बचपनसे ही इन्हें

दुबले-पतले लम्बे और मजबूत हड्डियोंके मनुष्य देखता आता था। भक्तिन अंधी हो गयी थीं, इससे खेतीका काम हलवाहेसे करवाते थे। तुलसीकी माला तो दम्पतिके हाथोंमें सरकती ही रहती थी। दम्पतिकी रामनामके जपकी संख्या-गणना बड़ी विचित्र थी। लाख-करोड़का हिसाब तो ये जानते ही नहीं थे। पढ़े-लिखे तो थे नहीं, एक किलो अरहर या मटर रख लेते और जब एक माला पूरी होती, तब एक दाना दूसरे बर्तनमें रख देते थे। यों जब सेरभर दाने पूरे हो जाते, तब भक्त कहते—'भगतिन! मोर सेरवा पूर होइगै।'[1] इधर भगतिन भी इसी भाँति होड़-सी लगाकर कहती—'भगत! हमार भगवान् तो तुही हो न, लेकिन मैं तुम्हार भगवानोंके भजथूँ; लेव मोर सेरवा पूर होइगै।'[2]

इसी प्रकार दोनोंका जीवन बड़े आनन्दसे कटता था। समयपर एक बहुत ही ऊँचे महात्माके संगसे इनकी अवस्था बहुत ही उन्नत हो उठी। क्षण-क्षणमें भगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शन होना तो इनके लिये स्वाभाविक-सा हो गया था। भक्तिनके मरनेपर भक्तने अपनी कुल ७०० रुपये की पूँजी तथा घरमें जो अन्न और बैल थे, सब कुछ गोशालामें दे डाला। खेत बँटाईपर दे दिया और उससे आसानीसे पावभर दाना रोजाना लेकर उसीपर गुजारा करने लगे। अब रात-दिन निर्द्वन्द्व भजन करना ही इनका काम हो गया। इन्होंने मुझे कई घटनाएँ सुनायीं, जिनमें दो-एक घटनाएँ यहाँ लिख देता हूँ।

एक बार भक्तजी तुलसी और पीपलपर जल चढ़ानेके बाद सूर्यको अर्घ्य दे रहे थे; किन्तु आँखें बंद करते ही बाह्य-ज्ञानशून्य

१-भक्तिन! मेरा सेर पूरा हो गया।

२-भक्त! हमारे भगवान् तो तुम्हीं हो, पर मैं तुम्हारे भगवान्‌को भजती हूँ। लो, मेरा भी सेर पूरा हो गया।

होकर वे देखते हैं कि सारा संसार प्रकाशमय हो गया है। वे बड़ी देरतक इस अवस्थामें मस्त रहे। जब भक्तिनने जाकर जगाया, तब हँस-हँसकर अपनी गँवारू भाषामें जितना वर्णन कर सके उतना उस अनिर्वचनीय दृश्यका वर्णन किया। इसके अनन्तर कई महीनेतक सूर्यार्घ्य-दानके समय वे इसी प्रकार देखते रहे। इसपर गाँववाले उन्हें पागल कहने लगे थे। भक्तजी भी चुपचाप पागल बन गये, सयाने बनकर इस दर्शनके सुखको छोड़ना उन्होंने पसंद नहीं किया।

कुछ दिनोंके बाद माघ महीनेकी एक रातके समय इनके मनमें अनुराग उठा और बड़बड़ाने लगे—'दादा! तुम्हरे एकठँ काली कमरिया होई और यदि जड़ियामें गाय बिन्दराबनमें चरावत होवौ, बड़ा जाड़ लागत होई, आओ, मैं आपन रजैय्या ओढ़ाय देवँ हे दीनानाथ!'[१] बार-बार रो-रोकर वे यों प्रार्थना करते रहे। करीब एक बजे नींद आयी तब देखते हैं कि बालरूपधारी कृष्णभगवान् प्रकट होकर बोले—'भगत! ओ भगत! जाड़ लागतबाय।'[२] भक्तने कहा—'के होय, जगदेउआ[३] (एक पड़ोसी लड़का)!' तब भगवान्‌ने कहा—'अरे, अबतक तो रोय-रोय बोलावत रहिन, अब कहत हैं जगदेउआ-जगदेउआ! हम जात बाटी।'[४] अब तो भक्तको होश आया, उठ दौड़े—'के होय दादा! दीनानाथ! दीनानाथ!!'[५]

१-'दादा, तुम्हारे एक ही काली कमरिया होगी और इस जाड़ेमें तुम वृन्दावनमें गायें चराते होओगे, बड़ा जाड़ा लगता होगा। हे दीनानाथ! आओ, मैं अपनी रजाई तुम्हें ओढ़ा दूँ।'

२-भगत! ओ भगत! जाड़ा लगता है।

३-कौन है, जगदेव?

४-अरे अबतक तो रो-रोकर बुलाता था, अब कहता है—'जगदेव! जगदेव!' हम जाते हैं।

५-कौन है? दादा! दीनानाथ! दीनानाथ!

जो कुछ भी हो भक्तजी रो-धोकर अपनी खटियापर लेट गये। वे आँखें बंद किये पछता रहे थे कि रजाईके नीचेसे उन्हें तारे दिखायी देने लगे। मानो रजाई या घरके छप्परका कोई आवरण ही नहीं है। थोड़ी देरके बाद विशाल लहरें लेता हुआ एक ऐसा प्रकाश दिखायी पड़ा, जिसका कहीं ओर-छोर न था। भक्तजी उसीमें हिलोरें लेते हुए साकेत पहुँचे। वहाँ उन्हें अपने आराध्य श्रीराम, श्रीलक्ष्मण, हनुमान् आदि सभीके दर्शन हुए। तब उन्होंने साष्टांग दण्डवत् कर यह प्रश्न किया—'महाराज! भरत भुआल कहाँ हैं?' इतनेमें उन्हें भरतजीने भी दर्शन दिया।······· (यहाँ बहुत-सी ऐसी बातें हैं जिन्हें लिखनेका न समय है और न स्थान ही है।) थोड़ी देरके बाद उसी लोकमें उन्हें उनके रहनेका स्थान दिखलाया गया। उनके परम पूज्य एक महात्मा और इन पंक्तियोंके लेखकके गुप्त गुरुका स्थान भी दिखलाया गया। इस प्रकार भक्तोंकी भावना उन्हें प्रत्यक्ष हुई। दूसरे दिन बेचारे दौड़े हुए मेरे पास आये और अपनी सारी कहानी सुनायी। मेरे पातकी हृदयमें भी अब उनके पागल ही होनेका विश्वास दृढ़ होने लगा। बेचारा बूढ़ा अपनी सारी कहानी महाराज! महाराज! कहकर सुनाता रहा और मैं उसे बेवकूफ पागल समझकर मुसकराता रहा। यह मेरी कितनी नीचता थी। यह सोचकर अब मुझे बड़ा दुःख होता है। दूसरे दिन रातको भक्तजी फिर वही जाड़ेवाली और गाय चरानेवाली भावना रो-रोकर अपने 'दीनानाथ' के सामने प्रकट करने लगे। देखते-ही-देखते एक बालक दूरसे मुरली दिखा-दिखाकर भगतजीको डाँटने लगा, 'क्यों रे बेवकूफ, तूने सारी बातें·····उससे कह दीं। अब तुझे····' इस फटकारपर बेचारे भक्तजीने मुझे नेकनीयत

बतलाते हुए मेरे लिये बड़ी विनम्रताके साथ उस मुरलीवाले बालकसे सिफारिश की।

दूसरे दिन बेचारे भक्तजी, जो सचमुच मेरे पिताके साथी थे, लाठी टेकते हुए आये और मुझसे एकान्तमें कहने लगे— 'हे ब्राह्मणके बालक! तुहमा कौनौ अस बात ना चाही जौन भगवान् कूँ न पसन्द पड़े। भला हमका पागल काह समझत रहा; दीनानाथ हमका डाँटत रहिन हैं, तुम्हें विश्वास नाहीं रहा, तब बनावटी बात मोसे काहेके कह्यौ, का मैं रिसियातेऊँ?'[१] अब तो मैं भयवश थर-थर काँप उठा कि 'हाय! मैंने एक भगवद्भक्तका निरादर ही नहीं किया बल्कि मुझमें कितना बड़ा दम्भ है?' इस प्रकार पछताते हुए मैं भक्तजीके साथ एक बहुत बड़े महात्माके यहाँ गया, अपनी कथा उन्हें सुनायी, सब सुनकर महात्माजीने मुझे आश्वासन दिया।

एक दिन बेचारे भक्तजी अँधेरी रातमें जंगल कठारके पश्चिमी रास्तेसे घर जा रहे थे। बीच रास्तेमें एक मशहूर साँड़ जो कि रातमें लोगोंको मार देता था, डकारता हुआ आ पहुँचा। इन्हें कुछ नहीं सूझ पड़ा, लगे अपने दीनानाथसे कहने—'अरे दीनानाथ! अरे दीनानाथ!! बड़का सँड़वा आज मारि डारी! तुहरै बदनामी होई कि नन्हुआँ भगतवाकें साँड़ मारि डारिस और उई प्रेत होईगै।'[२] इतनेहीमें भगतजी देखते हैं कि बारह वर्षका सुन्दर

१-'हे ब्राह्मणके बालक! तुम्हें कोई ऐसा काम नहीं करना चाहिये, जो भगवान्‌को पसंद न हो। भला बताओ तो, हमें पागल क्यों समझते थे। दीनानाथ हमको डाँटते थे। तुम्हें विश्वास नहीं था तो बनावटी बात हमसे क्यों की। क्या मैं तुमसे नाराज हो सकता था?'

२-'हे दीनानाथ! हे दीनानाथ!! यह बड़ा साँड़ आज मुझे मार डालेगा। इसमें तुम्हारी ही बदनामी होगी कि नान्हूँ भक्त था, उसे साँड़ने मार डाला और वह प्रेत हो गया।'

लड़का साँड़की पीठपर हाथ रखे उसकी पूँछ ऐंठता हुआ उसको भगतके सामनेसे हाँकता हुआ दूसरी ओरको चला जा रहा है। थोड़ी देरतक तो भक्तजी चक्करमें रहे, परंतु शीघ्र ही समझ गये कि यह उनके दीनानाथकी करामात है। तब खूब प्रेमसे दण्डवत् करते, हँसते, रोते, नाचते अपनी कुटीमें गये।

कुछ वर्ष हुए इस सरल प्रेमी भक्तने एक त्यागी संन्यासीकी भाँति अपने नश्वर शरीरको छोड़कर परम धामको प्रयाण किया।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

भक्त उद्धवरामजी ब्रह्मचारी

भक्त उद्धवरामजीका जन्म बदायूँ जिलेमें हुआ था। आपको जन्मसे ही वैराग्य था। आप संसारकी प्रत्येक वस्तुको तृणवत् समझते और सदैव संसारकी असारताका खयाल कर उसमें फँसे हुए जीवोंको देखकर दुःखी होते। आपके बड़े भाई महान् ईश्वरभक्त थे। कहते हैं कि उनको ईश्वरके प्रत्यक्ष दर्शन कई बार हुए थे। बाल्यावस्थामें ही ईश्वरका गुणगान और कीर्तन सुनकर उनके हृदयमें श्रीकृष्णभक्तिका बीज अंकुरित हो उठा था और धीरे-धीरे उन्हें संसारसे वैराग्य हो गया था। एक बार इनके बड़े भाई पतित-पावनी भगवती भागीरथीके तटपर स्नान करने हरिद्वार गये। परम पुनीत जाह्नवीके जलके स्पर्शमात्रसे ही उन्हें रोमांच हो आया। उसी समय उनके हृदयमें दैवी प्रकाश हुआ और भक्तवत्सल आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्णने उनके सम्मुख प्रकट होकर उनको एक शालग्रामकी मूर्ति प्रसादरूपमें प्रदान की। घर लौटनेपर उन्होंने यह कथा उद्धवरामजीसे कही और उन्होंने वह मूर्ति उनसे माँग ली। वे उसकी नित्यप्रति विधिपूर्वक पूजा करते, जिससे उन्हें बड़ी शान्ति मिलती। एक बार इनके हृदयमें ज्ञानका प्रकाश हुआ और इनकी इच्छा भगवान्‌के लीलास्थलोंका दर्शन करनेकी हुई। तब आपको स्वप्नमें आदेश हुआ कि श्रीबदरिकाश्रम जाओ, वहाँ तुम्हें श्रीकृष्णानन्द ब्रह्मचारीके दर्शन होंगे और तुम उन्हें गुरु बना लेना।

भगवान्‌के आज्ञानुसार आप बदरिकाश्रम पहुँचे। श्रीबदरिकाश्रमकी सुन्दर झाँकीके दर्शन करते ही आप प्रेममें विह्वल होकर मूर्च्छित होकर गिर पड़े। उसी समय भाग्यसे श्रीकृष्णानन्दजी वहाँपर हरिदर्शनकी लालसासे आये। प्रेममें सराबोर हुए उद्धवरामजीको देखकर उनका मन स्वभावतः ही इनकी ओर आकृष्ट हो गया

और उन्होंने इन्हें उठाकर हृदयसे लगा लिया, जिससे इन्हें चेतना लाभ हुई। उन महात्माकी वेष-भूषा और रूप देखकर इन्हें अपने स्वप्नका स्मरण हो आया और ये उन महात्माके चरणोंपर गिर पड़े और उन्हें अपना गुरु बना लिया। स्वामीजीने इन्हें मन्त्रकी दीक्षा दी, जिसे सुनते ही ये आनन्दावेशमें मूर्च्छित हो गिर पड़े। कुछ समय बाद आप अपने घर बदायूँ श्रीगुरुजीके साथ आये। वहाँ कुछ दिन अपने गुरुके साथ रहे; फिर उनके आदेशानुसार 'शीरपुर' (बम्बई प्रान्तमें एक स्थान) चले गये। यहाँ आप नित्य गुरुसेवा और श्रीपातालेश्वर नामक महादेवकी पूजा-अर्चनामें तत्पर रहकर कालयापन करने लगे। कुछ समय बाद इनके गुरु नर्मदा-तीरपर स्थित एक स्थानमें, जो बिम्बलेश्वरके नामसे प्रसिद्ध है, चले गये। इससे आपको बड़ा दुःख हुआ; परंतु आपने इसे ईश्वर-आज्ञा समझकर शिरोधार्य किया और अपना सब समय ईश्वर-भजन तथा श्रीपातालेश्वरकी सेवामें व्यतीत करने लगे।

एक बार आपको भगवान् शिवके साक्षात् दर्शनकी उत्कट लालसा हुई। मूर्तिरूप शिवजीकी पूजा-अर्चना तो ये श्रीपातालेश्वरके मन्दिरमें नित्य ही किया करते थे। परंतु आज इनका मन साक्षात् शिवदर्शनके लिये विशेषरूपसे अधीर हो उठा। आप शिवमूर्तिके सम्मुख जाकर प्रार्थना करने लगे—

'हे प्रभो! मैंने ऐसा कौन-सा अपराध किया है, जिसके फलस्वरूप मैं अभीतक आपके दर्शनके लाभसे वंचित हूँ। प्रभो! मैंने सुना है कि आप बड़े दयालु हैं, तो फिर आप मुझपर दया क्यों नहीं करते? यह सत्य है कि मैं पतित हूँ, पर नाथ! आप तो पतित-पावन कहलाते हैं। यह ठीक है कि मैं आपकी विधिपूर्वक पूजा करनेमें असमर्थ हूँ, पर प्रभो! आप तो आशुतोष हैं। आप अकारण ही कृपा करनेवाले हैं। फिर हे प्रभो! क्यों नहीं

मुझे दर्शन देते? प्रभो! दया करो, नाथ! इस दासको क्यों अभीतक अपने दर्शनके लाभसे वंचित कर रखा है? यों कहते-कहते आप श्रीचन्द्रशेखरकी मूर्तिके सम्मुख प्रेमविह्वल हो फूट-फूटकर रोने लगे। भक्तकी पुकार सुनते ही भक्तवत्सलने साक्षात् प्रकट होकर भक्तको हृदयसे लगा लिया। भगवान्‌को अपने सम्मुख उपस्थित देखकर इनके नेत्रोंमें प्रेमाश्रु भर आये और कण्ठ रुँध गया। आपने प्रभुकी स्तुति करनी चाही; पर अधिक प्रेमावेश होनेके कारण न कर सके। तब भगवान् चन्द्रमौलिने अपना वरदहस्त इनके मस्तकपर रखा और तब इन्होंने प्रभुकी बहुत प्रकारसे स्तुति की। इससे भगवान् बड़े प्रसन्न हुए और इन्हें वरदान माँगनेको कहा। परंतु जो संसारकी असारताको समझ चुका है, उसे इसके सुखकी परवा क्यों होने लगी? जिसके सामने त्रिलोकीके नाथ खड़े हों, उसे और किस धनकी चाह रह सकती है? अन्तमें भगवान्‌के अनुरोध करनेपर आपने कहा—'हे दीनवत्सल! केवल आपकी कृपाकोरसे ही सब क्लेश दूर हो जाते हैं। मुझे तो आपने अनुग्रह करके दर्शन दे दिये हैं, अब मुझे किसी भी वस्तुकी चाह नहीं है। परंतु यदि आपकी यही इच्छा है और आप मुझपर प्रसन्न हैं तो कृपाकर मुझे यही वरदान दीजिये कि आपके चरणकमलोंमें मेरा विशेष अनुराग हो और मेरे प्राण-पखेरू आपमें विलीन हो जायँ।' भगवान् शंकरने भक्तकी प्रार्थना स्वीकार करके 'तथास्तु' कह दिया। श्रीउद्धवरामजीके प्राण भगवान्‌के सामने ही छूटे और वे परमब्रह्ममें जा मिले।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

भक्तवर स्वामी हरिदासजी गायनाचार्य

जुगुल नामसों नेम जपत नित कुंजबिहारी।
अवलोकत नित रहें केलि-सुखके अधिकारी॥
गान-कला-गंधर्ब स्याम-स्यामाको तोषैं।
उत्तम भोग लगाइ मोर मरकट तिमि पोषैं॥
नित नृपति द्वार ठाढ़े रहैं दरसन आसा जासुकी।
अस आसधीर उद्योत कर रसिक छाप हरिदासकी॥

(नाभाजी)

भक्तवर स्वामी हरिदास बहुत ऊँची प्रेमनिष्ठाके भक्त थे। आप सनाढ्य ब्राह्मण थे और सम्राट् अकबरके समकालीन थे। कहते हैं लड़कपनसे ही आपका मन-भ्रमर श्यामसुन्दरके नव-नीरद मुखकमलके मकरन्दपानमें फँस गया था। जो एक बार इस हरि-रसका तनिक-सा स्वाद पा लेता है, उसे जगत्के सारे सुख—सारे रस नीरस और फीके प्रतीत होने लगते हैं। स्वामीजी बड़े ही त्यागी, निःस्पृही और प्रेमी थे, आप भक्तिके प्रबल वेगको न रोक सकनेके कारण जन्मभूमि छोड़कर श्यामसुन्दरकी लीलाभूमि वृन्दावनमें जाकर रहने लगे थे और त्रिभुवनकमनीय प्रेमराशि भगवान् श्रीकृष्णको परम प्रियतम मानकर अपनेको उनकी चिर-संगिनी सखी समझा करते थे।

कहा जाता है कि इनका सभी समय भगवान्के नित्यविहारके ध्यानमें बीतता था। खाना-पीना, सोना-उठना, गाना-बजाना सभी मानो प्यारे मनमोहनके साथ ही हुआ करता था, समय-समयकी भगवान्की माधुरी-छबि इनके दिव्य नेत्रोंके सामने रहती थी। ये कभी भगवान्की स्तुति करते, कभी उनके साथ

खेलते, कभी विनोद करते, कभी सेवा करते, कभी भोजन कराते, कभी गा-बजाकर उन्हें रिझाते, कभी नाचने लगते और कभी प्रेमविह्वल हो बाहरसे बेहोश हो जाया करते थे। ऐसी परम सुखकी स्थिति बिरले ही भाग्यवान् भक्तकी हुआ करती है।

एक दिन इन्हें भेंट करनेके लिये एक शिष्य बढ़िया इत्रकी शीशी लाया। उस समय स्वामीजी महाराज यमुना-तीरपर भावावेशमें स्थित थे। भक्तने लाकर आपके हाथमें शीशी दे दी। इन्होंने भी भावावेशमें ही उसे ले लिया। कहते हैं कि उस समय आप ध्यानमें श्रीव्रजकिशोरके साथ होली खेल रहे थे और भगवान् स्वयं इनके शरीरपर गुलाल मल रहे थे। स्वामीजीने इत्रकी शीशी पाते ही उसे भगवान्के शरीरपर उड़ेल दिया। शिष्यकी दृष्टिमें इत्र जमीनपर बालूमें गिर पड़ा। उसके मनमें कुछ खेद हुआ। कुछ समय बाद जब स्वामीजीको बाह्य ज्ञान हुआ, तब शिष्यके मनके खेदकी बातको जानकर उससे आप कहने लगे कि 'भाई! जरा जाकर श्रीबिहारीजीके दर्शन तो कर आओ।' वह तुरंत मन्दिरमें गया। सारा मन्दिर सुगन्धसे भर रहा था और श्रीबिहारीजीके सारे अंग इत्रसे सराबोर थे। तब उसकी आँखें खुलीं; स्वामीजीकी निष्ठापर उसे परम विश्वास हो गया और वह आकर इनके चरणोंमें गिर पड़ा। उसका इत्र लाना सफल हो गया।

एक बार एक भावुक पुरुष शिष्य बननेके लिये स्वामीजीके पास आया और उसने एक बहुमूल्य हीरा इनको भेंट दिया। स्वामीजीने इस बातको जान लिया कि इस हीरेमें इसकी बहुत आसक्ति है। जबतक संसारकी किसी भी वस्तुमें आसक्ति और परम अनुराग बना रहता है, तबतक प्रियतमोंमें परम प्रियतम साँवरेसे यथार्थ प्रेम नहीं हो सकता। यह विचार कर इन्होंने

उससे कहा कि 'जाओ, इस हीरेको तुरंत श्रीयमुनाजीमें बहा दो।' स्वामीजीके आज्ञानुसार उसने हीरा श्रीयमुनाजीके प्रवाहमें फेंक तो दिया, परंतु मनमें उसका खयाल बना रहा और बहुमूल्य हीरा यों बहा देनेके कारण कुछ क्षोभ भी हुआ। स्वामीजी उसके मनकी बात जानकर सोचने लगे कि अभी इसके मनसे पत्थरका मोह हटा नहीं है; अतः उसका हाथ पकड़कर उसे एक घने जंगलमें ले गये और वहाँ उसे हीरोंके ढेर दिखाकर कहने लगे कि 'भाई! यदि तुम्हारा इन पत्थरोंमें प्रेम है तो चाहे जितने उठा लो, परंतु यह खयाल रखना कि ये सारे पदार्थ भगवत्-प्रेमकी प्राप्तिमें बड़े ही बाधक हैं। जहाँ भोगोंमें प्रेम बना है, वहाँ भगवान्‌में प्रेम कहाँ है? ये जगत्‌के पदार्थ भगवत्-प्राप्तिके मार्गमें मानो लुटेरे हैं। जबतक तुम इनके फेरमें पड़े रहोगे, तबतक न तो श्रीहरिके चिन्ताहरण चरणारविन्दोंमें तुम्हारा चित्त अचलरूपसे लगेगा और न तुम परमानन्द-सिन्धुकी सुधा पीकर कृतार्थ ही हो सकोगे। अतएव यदि भव-भयहारी श्रीहरिको चाहते हो तो सच्चे सुखको हरण करनेवाले इन पत्थरके हीरोंसे चित्तको हटा लो।'

इस अद्भुत दृश्यको देख और स्वामीजीके उपदेशको सुनकर उसका चित्त विषयोंसे हट गया और वह सम्पूर्णरूपसे इनके शरणागत हो गया। योग्य अधिकारी समझकर स्वामीजीने उसे दीक्षा दी और साधनाका सुगम मार्ग बताकर कृतार्थ कर दिया।

स्वामीजी महाराज संगीतके महान् अनुभवी आचार्य थे। अकबरके दरबारी प्रसिद्ध गायनाचार्य तानसेन आपके ही शिष्य थे। तानसेनकी संगीतकलापर मुग्ध होकर एक दिन अकबरने उससे गुरुका नाम पूछा और तानसेनके यह कहनेपर कि 'मेरे गुरु भगवद्भक्त स्वामी हरिदासजी हैं और वृन्दावनमें निवास

करते हैं।' अकबरने उनके दर्शन करना चाहा। तानसेनने कहा, 'सरकार! उन्हें यहाँ बुलाना तो असम्भव है; क्योंकि वे धन-मानकी तनिक भी परवा नहीं करते; आपकी इच्छा हो तो आप स्वयं वहाँ चलिये।' अकबर तानसेनको साथ लेकर स्वामीजीकी कुटियापर गये। स्वामीजी उस समय भगवान्‌के सामने प्रेमविभोर हुए एक पद गा रहे थे। अकबर उसे सुनकर चकित हो गये। फिर तानसेनने एक पद गाया और जान-बूझकर उसमें दो-एक जगह सुर-ताल भंग कर दिया। इसपर स्वामीजी महाराज स्वयं उसी पदको गाने लगे। पद सुनकर सभीका चित्त भगवत्प्रेमसे भर गया। अकबरने स्वामीजीकी सेवामें बहुत कुछ भेंट करना चाहा, परन्तु निःस्पृही हरिदासजीने कुछ भी ग्रहण नहीं किया। तानसेनके साथ सम्राट् अकबर दिल्ली लौट आये। एक दिन अकबरने तानसेनसे फिर वही पद गवाया; परंतु उनको वैसा आनन्द नहीं मिला। तब बादशाहने तानसेनसे कहा कि 'उस दिन इस पदको सुननेमें बड़ा भारी आनन्द आया था, आज वैसा क्यों नहीं हुआ?' तानसेनने कहा, 'जहाँपनाह! मुझमें वह रस कहाँसे आ सकता है? स्वामीजी महाराज भगवान्‌के प्रेमके वश हो त्रिभुवननाथको अपना गान सुना रहे थे और मैं दिल्लीके बादशाहको रिझानेके लिये गा रहा हूँ। यही इसका प्रधान कारण है।' बादशाहने भी सोचकर इस बातको ठीक ही समझा।

स्वामीजीने पद भी बहुत-से बनाये हैं। श्रीराधेश्यामके विहार-सम्बन्धी आपके बहुत-से पद हैं। उस पदावलिको 'केलिमाला' कहते हैं। सिद्धान्तपर भी आपने बहुत-से पद बनाये हैं। आपके पदोंमें पिंगलसंगत कुछ भूलें प्रतीत होती हैं, परंतु उनमें भक्ति और प्रेमका जो स्रोत बहता है, उसमें

सारी भूलें बह जाती हैं। संगीतके रूपमें आपके पद पूरे उतरते हैं। आपके सम्प्रदायका नाम टट्टीसम्प्रदाय है। इस सम्प्रदायमें बहुत अच्छे-अच्छे त्यागी, प्रेमी और अनुभवी महात्मा हो चुके हैं। आपका चेतावनीका एक पद यह है—

हरिके नामको आलस क्यों
करत है रे काल फिरत सर साँधै।
हीरा बहुत जवाहिर संचे, कहा भयो हस्ती दर बाँधै॥
देर कुबेर कछू नहिं जानत, चढ़ो फिरत है काँधै।
कह हरिदास कछू न चलत जब, आवत अन्तकी आँधै॥

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

ठाकुर उद्धारणदत्त

पंद्रहवीं शताब्दीके अन्तमें हुगली जिलेके अन्तर्गत सरस्वती नदीके तटपर स्थित सप्तग्राम नामक एक समृद्धिशाली नगर था। श्रीकरदत्त नामक एक ऐश्वर्यशाली व्यापारी वहाँ आकर निवास करने लगे। श्रीकरदत्त शाण्डिल्य-गोत्रीय प्रसिद्ध वैश्य थे। वे अपनी सदाशयता और दया-धर्मपरायणताके कारण वहाँके निवासियोंके अत्यन्त श्रद्धापात्र हो गये थे। वे भूखों, अनाथों और दुःखियोंकी सहायता करनेमें कुछ भी उठा नहीं रखते थे। उनकी धर्मपत्नी भद्रावती भी सुशीला, सच्चरित्रा, पतिपरायणा एवं दया-धर्मशीला थी। इन्हीं भद्रावती देवीके गर्भसे शक १४०३ में महाभागवत श्रीउद्धारणदत्तका जन्म हुआ। समय पाकर इनकी शिक्षा-दीक्षा हुई। पिताकी मृत्युके बाद उद्धारणदत्त ही उनके सम्पूर्ण सम्पत्तिके अधिकारी हुए। इसी समय उद्धारणदत्तने एक जमींदारी खरीदकर और उसे बसाकर अपने नामानुसार उसका नाम उद्धारणपुर रखा, जो आज भी कटवेके समीप विद्यमान है। पिताके समान पुत्र भी पूर्ण सदाचारी, परोपकारी और भगवद्भक्त निकला। इनके दयाभावके कारण बंगालके तत्कालीन नवाब सुलतान हुसेनशाह इनका बहुत सम्मान करते थे।

जिस समय भगवान् चैतन्यदेवके परमप्रिय सहचर श्रीनित्यानन्दजी बंगालमें हरिनामामृतपान करा रहे थे, उस समय उनसे हरिनामकी दीक्षा लेकर ठाकुर उद्धारणदत्त प्रेम-निमग्न हो गये और अपने पुत्र श्रीनिवासको अतुल सम्पत्तिका मालिक बनाकर श्रीनीलाचलधामको चल पड़े और श्रीमहाप्रभुका प्रसाद पाते हुए सुखपूर्वक वहीं निवास करने लगे। वहाँसे फिर श्रीवृन्दावनधाममें

आकर रहने लगे। ऐसी किंवदन्ती है कि इनकी भक्तिसे प्रसन्न होकर परमाराध्या, महाविद्या, शक्तिस्वरूपिणी माँ इन्हें समय-समयपर प्रत्यक्ष दर्शन दिया करती थीं। इनके जीवनकी कतिपय घटनाओंमें एक भक्तिपूर्ण घटनाका यहाँ उल्लेख किया जाता है।

बंगालकी स्त्रियाँ अपने हाथोंमें शंखकी चूड़ियाँ पहना करती हैं। वहाँ उन चूड़ियोंको शाँखा और उन्हें बेचनेवालेको शाँखारी कहते हैं। एक दिन एक शाँखारी सप्तग्राममें शाँखा बेचनेको आया। सरस्वती नदीके तटपर घूमते समय एक बारह वर्षकी बालिकाने उससे आकर कहा कि 'तुम हमें शाँखा पहना दो।' शाँखारीने शाँखा पहनाकर उससे दाम माँगे तो उसने कहा कि 'मैं तो इस समय स्नान करने जा रही हूँ, मेरे पास रुपये नहीं हैं, तुम उद्धारणदत्तके यहाँ जाकर कह दो कि मैंने आपकी लड़कीको शाँखा पहनायी है, उनके दाम दे दीजिये।' शाँखारीने कहा कि 'यदि वे मेरी बातपर विश्वास न करें तो मैं दाम कैसे पाऊँगा?' बालिकाने कहा कि 'तुम उनसे कह देना कि अपने पास रुपये न होनेसे उसने कहा है कि तुम उद्धारणदत्तके घरपर जाकर कहना कि पूर्व-दिशावाले कमरेकी पश्चिम तरफकी आलीमें सोनेकी पाँच मुहरें रखी हैं, वे दे दीजिये। यदि इतनेपर भी तुम्हें मूल्य न मिले तो तुम यहाँ आकर शाँखा मुझसे वापस ले जाना।' शाँखारीको विश्वास हो गया। बालिका नदीकी ओर चली गयी और शाँखारी उद्धारणदत्तके घरकी ओर चला। वहाँ पहुँचकर जब उसने दाम माँगे, तब उद्धारणदत्तने कहा कि 'हमारे तो कोई लड़की है ही नहीं, फिर तुमने शाँखा पहनायी किसको?' यह सुनकर

शाँखारीने पाँच मुहरोंवाली बात कही। उद्धारणदत्तने भीतर जाकर देखा कि सचमुच ही शाँखारीके बताये हुए स्थानपर पाँच स्वर्ण-मुद्राएँ रखी हैं। मुद्रा देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ कि ये यहाँ आयीं कहाँसे? यदि किसीने भूलसे यहाँ रख भी दी हो तो इस अपरिचित व्यक्तिको मालूम कैसे हो गया? जरूर कोई-न-कोई ईश्वरीय लीला है। उद्धारणदत्तने तुरंत आकर शाँखारीसे पूछा कि 'क्या तुम मुझे उस बालिकाको दिखला सकते हो?' उसने उत्तर दिया—'हाँ सरकार! आप मेरे साथ सरस्वती नदीके तटपर चलिये, वह वहीं स्नान करने गयी है।' उद्धारणदत्त शाँखारीके साथ हो लिये। परंतु सरस्वती नदीके तटपर या रास्तेमें कहीं भी वह लड़की दिखायी नहीं दी। शाँखारी एक सम्भ्रान्त मनुष्यके साथ अपने इस व्यवहारका विचार करके सजाके डरसे रोने लगा। इतनेमें ही शाँखारी और उद्धारणदत्त तथा उपस्थित अन्य लोगोंने भी देखा कि सरस्वती नदीमेंसे दो हाथ निकले, दोनों हाथोंमें दो-दो शाँखाएँ थीं। यह देखकर शाँखारीको बड़ा आश्वासन मिला। उद्धारणदत्त भी अपने ऊपर 'माँ' की कृपाका अनुभव करता हुआ उसके चरणोंमें गिर पड़ा और बोला—'भाई शाँखारी! वास्तवमें तू बड़ा भाग्यवान् है, तू ही अपनी माँका सुपुत्र है, आज स्वयं माँने आकर तेरे हाथसे चूड़ियाँ पहनी हैं।' फिर उद्धारणदत्तने शाँखारीको बहुत-सी मुहरें देकर विदा किया। उद्धारणदत्तके सम्बन्धमें भगवत्कृपाके प्रत्यक्ष अनुभवके विषयकी इसी प्रकारकी बहुत-सी घटनाएँ सुनी जाती हैं।

उद्धारणदत्त जातिके स्वर्णवणिक् थे। उन्होंने श्रीनित्यानन्दजीके साथ बंगालके बहुत-से भागोंमें भ्रमण करके परम गुह्य

'वैष्णवधर्म' का प्रचार किया था। जीवोंपर दया, भगवन्नाममें रुचि और वैष्णवसेवा यही उनके प्रचारका विषय था।

इस प्रकार ५७ वर्षकी अवस्थामें १४६० शकमें श्रीवृन्दावनधाममें इन्होंने इहलीला समाप्त की। आज भी श्रीवृन्दावनधाममें वंशीवटके निकट श्रीउद्धारणदत्तका प्रसिद्ध समाधि-मन्दिर बना है और प्रतिवर्ष हजारों यात्री उनके समाधि-मन्दिरपर श्रद्धापूर्ण पुष्पांजलि चढ़ाकर अपनेको सौभाग्यशाली समझते हैं।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

भक्त देवाजी पुजारी

उदयपुरके समीप श्रीरूपचतुर्भुज स्वामीका मन्दिर है। देवाजी पण्डा उसमें पुजारी थे। वे बहुत पढ़े-लिखे नहीं थे, परंतु भगवान्‌की पूजा-अर्चना बड़ी श्रद्धाके साथ विधिपूर्वक करते थे। भगवान्‌में उनका विश्वास था, जो भक्तिके लिये परमावश्यक साधन है। भगवान्‌की सेवासे उनका अज्ञान-अन्धकार नष्टप्राय हो चुका था।

एक दिनकी बात है—उदयपुरनरेश एक पहर रात बीतनेके बाद मन्दिरमें आये। शयनकी आरती हो चुकी थी। भगवान् पौढ़ चुके थे। भगवान्‌को शयन कराकर देवाजीने भगवान्‌के गलेका पुष्पहार उतारकर अपने सिरपर रख लिया था और अन्तर्गृहके पट बंद करके वे मन्दिरसे बाहर आ रहे थे—इसी समय महाराणा वहाँ पहुँचे। दरवाजेपर अकस्मात् महाराणाको देखकर देवाजी घबराकर मन्दिरमें घुस गये और उन्हें पहनानेके लिये भगवान्‌की माला ढूँढ़ने लगे। उस दिन दूसरी माला थी नहीं, अतएव महाराणा नाराज न हों, इसलिये देवाजीने मस्तकपर धारण किया हुआ पुष्पहार उतार लिया और बाहर निकलकर महाराणाके गलेमें पहना दिया। सोचने-विचारनेके लिये तो समय ही कहाँ था। देवाजीके सिरके सारे बाल सफेद हो गये थे और बाल थे लम्बे-लम्बे। दो-एक सफेद केश मालामें लगे महाराणाके गलेमें आ गये। राणाने बालोंको देखकर व्यंगसे कहा—'पुजारीजी! मालूम होता है भगवान्‌के सारे केश सफेद हो गये हैं।' देवाजीको इसका उत्तर देनेके लिये और कुछ भी नहीं सूझा, उन्होंने जल्दी-जल्दीमें डरते हुए कह दिया—हाँ सरकार! ठाकुरजीके सारे बाल सफेद हो गये हैं। राणाको पुजारीके इस उत्तरपर हँसी आ गयी।

साथ ही पुजारीके प्रति मनमें रोष भी आया। उन्होंने गम्भीर होकर कहा—'मैं कल सबेरे स्वयं आकर देखूँगा।' यों कहकर वे लौट गये।

देवाजीने उतावलीमें राणासे कह तो दिया, पर अब उनको बड़ी चिन्ता हो गयी। प्रातःकाल राणा आवेंगे और भगवान्‌के सफेद बाल न पाकर न जाने क्या करेंगे। देवाजीके मनमें आया—'भगवान् तो नित्य-नव-सुकुमार—नित्य तरुण हैं, उनकी गहरी घुँघराली काली अलकावली निरन्तर उनके मुनि-मन-मोहन श्रीअंगकी शोभा बढ़ाती रहती है। जिनकी तनिक-सी सुललित मधुरातिमधुर मुसकानसे जगत् प्रकाशित होता है, जिनके सुन्दरताकी सीमारूप नित्य-किशोर श्याम वदनको देखकर समस्त जगत् मोहित हो जाता है, सुन्दरताकी अधिष्ठातृ-देवी साक्षात् श्री नित्य-निरन्तर जिनकी पूजा-अर्चनामें लगी रहती है, उन नित्य दिव्य यौवन-सुषमासे सुशोभित भगवान्‌में वृद्धावस्था कहाँसे आवेगी। उनके केश सफेद कहाँसे होंगे?' यों सोचते-सोचते भगवान्‌के पुराने पुजारी भक्त देवाजी बड़े व्याकुल हो गये।

देवाजीकी आँखोंसे नींद उड़ गयी, खाया तो कुछ था ही नहीं। आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह निकली। देवाजीने कहा—'मेरे स्वामी! मेरे मुँहसे सहसा ऐसी बात निकल गयी। तुम तो नित्य नव-किशोर हो। तुम्हारे सफेद केश कैसे? पर सबेरे महाराणा आकर जब तुम्हारे काले बाल देखेंगे, तब तुम्हारे इस सेवककी क्या स्थिति होगी। राणाकी आँखोंमें यह सर्वथा मिथ्यावादी सिद्ध हो जायगा। मुझमें न भक्ति है, न श्रद्धा है। मैं तो केवल तुम्हें तुलसी-चन्दन चढ़ाकर अपना पापी पेट भरता हूँ। तुम्हारी नहीं, मैं तो पेटकी ही पूजा करता हूँ; परंतु लोग

मुझे तुम्हारी पूजा करनेवाला बतलाते हैं। सबेरे जब महाराणा मेरी बातको झूठ पाकर सबके सामने मेरी भर्त्सना करेंगे, तब लोग यही कहेंगे कि कितना बड़ा मूर्ख है यह। कहीं भगवान्‌के—फिर एक मूर्तिके भी श्वेत केश होते हैं? कुछ लोग मुझे अत्यन्त डरपोक बतावेंगे और कुछ यह कहेंगे कि 'अजी, भगवान् यदि आज भी सच्चे होते या भक्तवत्सल होते तो क्या बेचारे गरीब पुजारीकी बात न रखते? कहते हैं, प्रह्लादकी बात सच करनेके लिये वे खम्भेको चीरकर निकले थे। द्रौपदीकी लाज बचानेके लिये राजसभामें उसकी अन्तहीन साड़ी बन गये थे। राधारानीके कलंक-भंजनके लिये सहस्र छिद्रोंके घड़ेमें उनके द्वारा जल मँगवा दिया था। फिर अपने केशोंको सफेद करना उनके लिये कौन बड़ी बात थी?' जितने मुँह उतनी बातें। नाथ! यह आपका अपराधी, दम्भी पुजारी उस समय कैसे मुख दिखलावेगा? और किसको क्या उत्तर देगा? पर प्रभो! मैं कैसे कहूँ कि तुम मेरी बात रखनेके लिये बुढ़ापा स्वीकार कर सफेद बालोंवाले बाबाजी बन जाओ। तुम्हें जो ठीक लगे, वही करो।'

यों कहकर देवाजी फुफकार मारकर रो पड़े! इसी प्रकार भगवान्‌को पुकारते और रोते-कलपते रात बीती। सारा जगत् सोता था। देवाकी करुण-पुकार किसीने नहीं सुनी। जागते थे देवा और देवाके हृदय-देवता—जो सदा ही जागते हैं और सबकी गुप्त-से-गुप्त बातोंको सुनते हैं। भृत्यवत्सल, शरणागतरक्षक भगवान्‌ने अपने पुजारी देवाजीकी करुण-पुकार सुनी। कैसे न सुनते? वे अनाथके नाथ, आर्तके आधार, विपन्नके बन्धु, दीनके आश्रय, कंगालके धन और अशरणके एकमात्र शरण जो ठहरे? भक्तकी बात रखनेके लिये भगवान्‌ने लीला की। चतुर्भुज भगवान्‌के सारे बाल सफेद हो गये। धन्य!

देवाजीने नहा-धोकर काँपते-काँपते अन्तर्गृहके किंवाड़ खोले, उनका हृदय भयके मारे धक्-धक् कर रहा था। किंवाड़ खोलते ही देखा—कल्याणमय कृपा-कल्पतरु श्रीविग्रहके समस्त केश शुभ्र हो गये हैं। देवाके हृदयकी विचित्र दशा है—यह स्वप्न है कि साक्षात्। करुणा-वरुणालयकी इस अतुलनीय कृपा और दीनवत्सलताको देखकर प्रेमविह्वल और आनन्दोन्मत्त देवाकी बाह्य चेतना जाती रही। वे बेसुध होकर जमीनपर गिर पड़े। पहुँच गये दिव्य देशमें और मुग्ध होकर पान करने लगे—प्रभुके उन्मादकारी पाद-पद्म-मकरन्द-सुधा-रसका। बहुत देरतक उनकी यही दशा रही। पता नहीं इस बाहरकी बेसुध अवस्थामें उन्होंने और किस जगदतीत विलक्षण सुखका कैसा और कितना अनुभव किया!

बहुत देरके बाद देवाकी समाधि टूटी। उनके दोनों नेत्रोंसे आनन्द और प्रेमके शीतल आँसुओंकी वर्षा हो रही थी। इसी समय महाराणा परीक्षाके लिये पधारे। देवाजीको विकलतासे रोते देखकर उन्होंने समझा कि 'रात्रिको मुझसे कह तो दिया पर अब भयके मारे रो रहा है।' इतनेमें ही उनकी दृष्टि भगवान्के श्रीविग्रहकी ओर गयी, देखते ही राणा आश्चर्य-सागरमें डूब गये—श्यामसुन्दरके समस्त केश सफेद चाँदी-से चमक रहे हैं। महाराणाको विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने समझा—'पुजारीने अपनी बात रखनेके लिये कहींसे सफेद बाल लाकर चिपका दिये हैं।' राणाके मनमें परीक्षा करनेकी आयी और उन्होंने अपने हाथसे चट भगवान्के सिरका एक बाल बलपूर्वक उखाड़ लिया। राणाने देखा—बाल उखाड़ते समय श्रीविग्रहको मानो दर्द हुआ और उनकी नाकपर सिकुड़न आ गयी। इतना ही नहीं, बाल उखड़ते ही सिरसे रक्तकी बूँद निकली और वह राणाके

अंगरखेपर आ पड़ी। राणा यह देखते ही मूर्च्छित होकर जमीनपर गिर पड़े।

पूरा एक पहर बीतनेपर महाराणाको चेत हुआ। उन्होंने देवाजीके चरण पकड़कर कहा—'प्रभो! मैं अत्यन्त मूढ़, अविश्वासी और नीच-बुद्धि हूँ। मैंने बड़ा अपराध किया है। भक्त क्षमाशील होते हैं—ऐसा मैंने सुना है। आप मेरा अपराध क्षमा कीजिये—मेरी रक्षा कीजिये।' यों कहते-कहते महाराणा अपने आँसुओंसे देवाजीके चरण धोने लगे। देवाजीने महाराणाको उठाकर हृदयसे लगा लिया—गद्‌गदवाणीसे कहा—'यह सब मेरे प्रभुकी महिमा है। मैं अशिक्षित गँवार केवल पेटकी गुलामीमें लगा था। भगवान्‌की पूजाका तो नाम था। पर मेरे नाथ कितने दयालु हैं, जो मेरी मिथ्या पूजापर इतने प्रसन्न हो गये और मुझ नालायककी बात रखनेके लिये उन्होंने अपने नित्य-किशोर सुकुमार विग्रहपर श्वेत केशोंकी विचित्र रचना कर ली। मैं क्या क्षमा करूँ—मैं तो स्वयं अपराधी हूँ। राजन्! मैंने तो झूठ बोलकर आपका तथा भगवान्‌का भी अपराध किया था। पर वे ऐसे दीनवत्सल हैं कि अपराधीके अपराधपर ध्यान न देकर उसकी दीनतापर ही रीझ जाते हैं।' राणा तथा देवा दोनों ही भगवान्‌की कृपालुताका स्मरण करते हुए रो रहे थे!

इस घटनाके बाद ही यह आज्ञा हो गयी कि आगेसे राणावंशमें राजगद्दीपर बैठनेके बाद कोई भी मन्दिरमें नहीं आ सकेंगे। जबतक कुमार रहेंगे तभीतक आ सकेंगे।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

भक्त राजा जयमल्लसिंहजी

राजा जयमल्लसिंहजी मेड़ताके राजा थे। ये बड़े ही नीतिज्ञ, सदाचारी, साधु-स्वभाव, नियमोंमें तत्पर और दृढ़निश्चयी भगवद्भक्त थे। यद्यपि ये भगवान्‌का स्मरण रखते हुए ही राज्यका सारा काम करते थे, तथापि प्रातःकाल डेढ़ पहर दिन चढ़नेतक तो प्रतिदिन एकान्तस्थलमें नियमितरूपसे भगवान्‌का ध्यान-भजन करते थे। इस समय बड़े-से-बड़े जरूरी कामके लिये भी कोई आपके पास नहीं जा सकता था। ये भगवत्-पूजनके आनन्द-सागरमें ऐसे डूबे रहते थे कि किसी प्रकारके बाहरी विघ्नसे उनका ध्यान नहीं टूटता था। इस समय उनकी अन्तर और बाहरकी दृष्टि मिलकर एक हो जाती थी और वह देखती थी—केवल एक श्यामसुन्दरकी त्रिभुवन-मोहन अनूप-रूपराशिको। इस समयकी उनकी प्रेमविह्वलता और समाधि-निष्ठाको सौभाग्यवश जो कोई देख पाता, वही भगवत्प्रेमकी ओर बलात् आकर्षित हो जाता था। इस प्रतिदिनकी नियमित उपासनामें अनेक बाधाएँ आयीं। राज्यके अनेक अत्यन्त आवश्यक कार्य उपस्थित हुए, परंतु जयमल्ल अपने प्रणसे नहीं डिगे।

जयमल्लके इस प्रणकी बात चारों ओर फैल गयी। एक मुसलमान नवाब लोभ, ईर्ष्या और दुर्बुद्धिवश जयमल्लसे वैर रखता था और इन्हें सतानेका मौका ढूँढ़ा करता था। उसे यह बात मालूम हुई तो उसने एक दिन प्रातःकालके समय बहुत-सी सेना साथ लेकर मेड़ता आ घेरा। लोगोंने आकर राजमें सूचना दी। राजाका कड़ा हुक्म था कि उसकी आज्ञा बिना किसीसे युद्ध आदि न किया जाय, अतएव दीवानने आकर

महलोंमें खबर दी; परंतु राजा जयमल्लके पास तो उस समय कोई जा नहीं सकता था। आखिर राजमातासे नहीं रहा गया। राज्य-नाशकी आशंकासे राजमाता साहस करके पुत्रके पास उनकी कोठरीमें गयी। उसने जाकर देखा—जममल्ल समाधिनिष्ठ बैठे हैं, बाह्य ज्ञान बिलकुल नहीं है, नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बह रहे हैं, बीच-बीचमें अनुपम आनन्दकी हँसी हँस देते हैं। उनके मुखमण्डलपर एक अपूर्व ज्योति फैल रही है। माता एक बार तो रुक गयी, परंतु पुत्रके अनिष्टकी सम्भावनासे उसने कहा, 'बेटा! शत्रुने चढ़ाई कर दी, कुछ उपाय करना चाहिये।' जयमल्लका चित्त तो भगवान्‌की रूप-छटामें निरुद्ध था। उसको कुछ भी सुनायी नहीं दिया। जब तीन-चार बार पुकारनेपर भी कोई उत्तर नहीं मिला, तब माताने हाथसे जयमल्लके शरीरको हिलाया। ध्यान छूटनेसे जयमल्लने आश्चर्यचकित हो नेत्र खोले। मनमें बड़ा क्षोभ हुआ, परंतु सामने विषण्ण-वदना जननीको खड़ी देखकर तुरंत ही भाव बदल गया और उन्होंने माताको प्रणाम किया। माताने शत्रुके आक्रमणका समाचार सुना दिया, परंतु जयमल्लको इस समय भगवच्चर्चाके सिवा दूसरी बात सुननेका अवसर ही नहीं था। उन्होंने चाहा कि माताको नम्रतासे समझा दूँ, लेकिन उनकी वृत्तियाँ तो भगवत्-रूपकी ओर प्रबल वेगसे खिंची जा रही थीं, समझावे कौन? जयमल्ल कुछ भी बोल नहीं पाये और उनकी समाधि होने लगी। माताने फिर कहा, तब परम विश्वासी भक्त जयमल्लके मुँहसे केवल इतने शब्द निकले—'भगवान् सब कल्याण ही करते हैं।' तदनन्तर उनकी आँखें मुँद गयीं। वह फिर सुख-दुःख, हानि-लाभ और जय-पराजयकी भावनासे बहुत परेके मनोहर नित्यानन्दमय प्रेम-राज्यमें प्रवेश कर गये। जगत्‌की क्षुद्र आँधी उनके मनरूपी

हिमालयके अचल शिखरको तनिक भी नहीं हिला सकी। माता दुःखी मनसे निराश होकर लौट आयी।

रणभेरी बजने लगी, शत्रुसेना कोई बाधा न पाकर नगरमें घुसने लगी। अब योग-क्षेमका भार वहन करनेवाले भक्तभावनसे नहीं रहा गया। श्यामसुन्दर त्रिभुवनको कँपानेवाले वीरेन्द्रवेशमें शस्त्रादिसे सुसज्जित हो अकस्मात् शत्रुसैन्यके बीचमें प्रकट हो गये। महाराज रघुराजसिंहजी लिखते हैं—

जानि निज सेवक निरत निज पूजनमें,
चढ़िकै तुरंग स्याम रंगको सवार है।
कर करवाल धारि कालहूको काल मानो,
पहुँच्यो उताल जहाँ सैन्य बे शुमार है॥
चपलासों चमकि चहूँ कित चलाइ बाजी,
भटनकी राजी कोटि करत प्रहार है।
रघुराज भक्तराज लाज रखिबेके काज,
समर बिराज्यो वसुदेवको कुमार है॥

ब्रह्मा और यमराज जिसके शासनसे सृष्टिकी उत्पत्ति और संहार करते हैं, उनके सामने क्षुद्र यवन-सेना किस गणनामें थी? बात-की-बातमें सब धराशायी हुए। उनका पुण्य आज सर्वतोभावसे सफल हो गया। भगवान्‌के हाथसे निधन हो वे सदाके लिये परम धन पा गये। शत्रु नवाब घायल होकर जमीनपर गिर पड़ा। पलोंमें इतना कामकर घोड़ेको घुड़सालमें बाँध सवार अन्तर्धान हो गये।

इधर जयमल्लजीकी पूजा शेष हुई। उन्होंने तुरंत अपना घोड़ा मँगवाया। देखते हैं तो घोड़ा थक रहा है, उसका शरीर पसीनेसे भींग रहा है और वह हाँफ रहा है। राजाने पूछा कि 'इस घोड़ेपर कौन चढ़ा था?' परंतु किसीने कोई जवाब नहीं दिया। इस

रहस्यको कोई जानता भी तो नहीं था। इतनेमें लोगोंने दौड़ते हुए आकर खबर दी कि 'शत्रुसेना तो सब मरी पड़ी है।' राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ। वह घोड़ेकी बात भूलकर तुरंत नगरके बाहर पहुँचे। देखते हैं, लाशोंका ढेर लगा है और विपक्षी नवाब घायल-से पड़े हैं। जयमल्ल उसके पास गये और प्रेमभावसे अभिवादन करनेके बाद उससे युद्धका विवरण पूछने लगे। उसने हाथ जोड़कर कहा—'महाराज! आपके यहाँ अनूप-रूप-शिरोमणि श्यामलमूर्ति महावीर कौन हैं? उन्होंने अकेले ही मेरी सारी सेनाका संहार कर डाला और मुझको भी घायल करके गिरा दिया। अहा! कैसा अनोखा उनका रूप है, जबसे मैंने उन नौजवान त्रिभुवन-मनमोहनको देखा है, मेरा चित्त उन्हें फिरसे देखनेके लिये व्याकुल हो रहा है।' जयमल्ल अब समझे कि यह सारी मेरे प्रभुकी लीला है! उनका शरीर पुलकित हो गया, नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बहने लगे। वे गद्‌गद वाणीसे बोले—'भाई! तुम धन्य हो, तुम्हारे सौभाग्यकी ब्रह्मा भी प्रशंसा करेंगे। अहा! मेरी तो आँखें उस साँवरे-सलोनेके लिये तरस ही रही हैं, तुम धन्य हो जो सहजमें ही उसका दर्शन पा गये।'

अब उसका सारा वैरभाव जाता रहा! जयमल्लने बड़े सम्मान और आरामके साथ उसे अपने घर पहुँचा दिया। वहाँ पहुँचकर वह भी सपरिवार भगवान्‌का परम भक्त हो गया।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

॥ श्रीहरिः ॥

परम श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार (भाईजी)-के अनमोल प्रकाशन

कोड	पुस्तक	कोड	पुस्तक
820	भगवच्चर्चा (ग्रन्थाकार)	355	महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर
050	पदरत्नाकर	356	शान्ति कैसे मिले ?
049	श्रीराधा-माधव-चिन्तन	357	दुःख क्यों होते हैं ?
058	अमृत-कण	348	नैवेद्य
332	ईश्वरकी सत्ता और महत्ता	337	दाम्पत्य-जीवनका आदर्श
333	सुख-शान्तिका मार्ग	336	नारीशिक्षा
343	मधुर	340	श्रीरामचिन्तन
056	मानव-जीवनका लक्ष्य	338	श्रीभगवन्नाम-चिन्तन
331	सुखी बननेके उपाय	345	भवरोगकी रामबाण दवा
334	व्यवहार और परमार्थ	346	सुखी बनो
514	दुःखमें भगवत्कृपा	341	प्रेमदर्शन
386	सत्संग-सुधा	358	कल्याण-कुंज
342	संतवाणी—ढाई हजार अनमोल बोल	359	भगवान्‌की पूजाके पुष्प
347	तुलसीदल	360	भगवान् सदा तुम्हारे साथ हैं
339	सत्संगके बिखरे मोती	361	मानव-कल्याणके साधन
349	भगवत्प्राप्ति एवं हिन्दू-संस्कृति	362	दिव्य सुखकी सरिता
350	साधकोंका सहारा	363	सफलताके शिखरकी सीढ़ियाँ
351	भगवच्चर्चा	364	परमार्थकी मन्दाकिनी
352	पूर्ण समर्पण	366	मानव-धर्म
353	लोक-परलोक-सुधार	526	महाभाव-कल्लोलिनी
354	आनन्दका स्वरूप	367	दैनिक कल्याण-सूत्र
		369	गोपीप्रेम

कोड	पुस्तक	कोड	पुस्तक
368	प्रार्थना—प्रार्थना-पीयूष	381	दीन-दुःखियोंके प्रति कर्तव्य
370	श्रीभगवन्नाम	379	गोवध भारतका कलंक एवं गायका माहात्म्य
373	कल्याणकारी आचरण	382	सिनेमा मनोरंजन या विनाशका साधन
374	साधन-पथ—सचित्र	344	उपनिषदोंके चौदह रत्न
375	वर्तमान शिक्षा	371	राधा-माधव-रससुधा-(षोडशगीत) सटीक
376	स्त्री-धर्म-प्रश्नोत्तरी	384	विवाहमें दहेज—
377	मनको वश करनेके कुछ उपाय	809	दिव्य संदेश..........
378	आनन्दकी लहरें		
380	ब्रह्मचर्य		

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित कुछ साधन-भजनकी पुस्तकें

कोड	पुस्तक	कोड	पुस्तक
052	स्तोत्ररत्नावली—सानुवाद	1214	मानस-स्तुति-संग्रह
819	श्रीविष्णुसहस्रनाम—शांकरभाष्य	1344	सचित्र-आरती-संग्रह
207	रामस्तवराज—(सटीक)	1591	आरती-संग्रह—मोटा टाइप
211	आदित्यहृदयस्तोत्रम्	208	सीतारामभजन
224	श्रीगोविन्ददामोदरस्तोत्र	221	हरेरामभजन—दो माला (गुटका)
231	रामरक्षास्तोत्रम्	225	गजेन्द्रमोक्ष
1594	सहस्रनामस्तोत्रसंग्रह	1505	भीष्मस्तवराज
715	महामन्त्रराजस्तोत्रम्	699	गंगालहरी
054	भजन-संग्रह	1094	हनुमानचालीसा—भावार्थसहित
140	श्रीरामकृष्णलीला-भजनावली	228	शिवचालीसा
142	चेतावनी-पद-संग्रह	232	श्रीरामगीता
144	भजनामृत—६७ भजनोंका संग्रह	851	दुर्गाचालीसा
1355	सचित्र-स्तुति-संग्रह	236	साधकदैनन्दिनी